MPASVO

GISI Impact Factor 0.2310
मई-जून २०१४
वर्ष-८ अंक-३
ISSN 0973-9777
ijraeditor@yahoo.in

भारतीय शोध पत्रिका

आन्वीक्षिकी

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रकाशन
एम.पी.ए.एस.वी.ओ. द्वारा आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित
अन्य सहसंयोजन
* सार्कः अन्तर्राष्ट्रीय शोध-पत्रिका
* एशियन जर्नल ऑफ मार्डन एण्ड आयुर्वेदिक मेडिकल साइंस
वाराणसी, उ०प्र० (भारत)

मई-जून २०१४ वर्ष-८ अंक-३
www.anvikshikijournal.com

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

मासद्वयी अन्तर्राष्ट्रीय शोध समग्र पत्रिका

प्रधान सम्पादिका

डॉ. मनीषा शुक्ला,maneeshashukla76@rediffmail.com

पुनर्निरीक्षक संपादक

प्रो. विभा रानी दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी, उ.प्र.,भारत

डॉ. नागेन्द्र नारायण मिश्र, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद,उ.प्र.,भारत

प्रो. उमेश चंद्र दुबे, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, उ. प्र.,भारत

सम्पादक

डॉ. महेन्द्र शुक्ल, डॉ. अंशुमाला मिश्रा

सम्पादक मण्डल

डॉ. सपना भारती, डॉ. भावना गुप्ता, डॉ. राजेश, डॉ. रेनू कुमारी, डॉ. निशी रानी, डॉ. संगीता जैन, डॉ. आरती बंसल, डॉ. कला जोशी, डॉ. सुनीता त्रिपाठी, डॉ. रानी सिंह, डॉ. स्वीटी बंदोपाध्याय, डॉ. अर्चना शर्मा, डॉ. पिन्टू कुमार, मधुलिका सिन्हा, डॉ. मधुलिका, डॉ. नीलू कुमारी, डॉ. मनीषा आमटे, डॉ. सुषमा पराशर, डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय, डॉ. मनोज कुमार राय, आशा मीणा, तन्मय चटर्जी, अनीता वर्मा, अनन्द रघुवंशी, नंद किशोर, रेनू चौधरी, श्याम किशोर, विमलेश कुमार सिंह, अखिलेश रध्वज सिंह, दिनेश मीणा, गुंजन, विनीत सिंह, नीलमणि त्रिपाठी, अंजू बाला, ब्रजेश कुमार, डॉ. इन्दुमती सिंह, रमेश चन्द

अन्तर्राष्ट्रीय सलाहकार मण्डल

रेव डोडामगोडा सुमनासार (श्रीलंका), वेन केन्डागेले सुमनारांसी थेरो (श्रीलंका), रेव टी धम्मारतना (श्रीलंका), पी.त्रिराची सोडामा (श्रीलंका), फ्रा च्युतिदेश सैन्सोम्बट (बैंकाक,थाईलैंड), फ्रा बूनसर्मस्त्रिथा (थाईलैंड), डॉ. सीताराम बहादुर थापा (नेपाल), मोहम्मद सौरजाई (जाबोल, ईरान), माजिद करीमजादेह (ईराक), डॉ. अहमद रेजा केईखाय फरजानेह (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद जारेई (जाहेडान, ईरान), मोहम्मद मोजटाबा केयाहफरजानेह (जाहेडान, ईरान), डॉ. होसैन जेनाबदी (सिस्तान एवं बलूचिस्तान, ईरान), मोहम्मद जावेद केयाह फरजानेह (जाबोल, ईरान)

प्रबन्धक

महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

सारांश एवं सूचीपत्र

मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र वाराणसी, मोतीलाल बनारसीदास सूचीपत्र दिल्ली, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय पत्रिका सूचीपत्र वाराणसी, सेन्ट्रल न्यूज एजेंसी सूचीपत्र दिल्ली, डी.के.पब्लिकेशन सूचीपत्र दिल्ली, नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ साइंस कम्यूनिकेशन एण्ड इन्फारमेशन रिसोर्स सूचीपत्र दिल्ली, नोएडा कॉलेज ऑफ फिज़िकल एजुकेशन सूचीपत्र गौतमबुद्ध नगर

पाठकों से

आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका प्रत्येक दो माह (जनवरी, मार्च, मई, जुलाई, सितम्बर एवं नवम्बर) पर एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण वाराणसी उ.प्र. भारत द्वारा प्रकाशित की जाती है। एक वर्ष में आन्वीक्षिकी,भारतीय शोध पत्रिका 6 भाग हिन्दी एवं 6 भाग अंग्रेजी एवं 3 अतिरिक्तांकों के भाग में प्रकाशित की जाती है। डॉक खर्च दर के सम्बन्ध में जानकारी हेतु सम्पर्क करें।

वार्षिक पाठक मूल्य दर

संस्थागत एवं व्यक्तिगत : भारतीय 5000+1000/-डाक शुल्क, एक प्रति 1200+100/- डाक शुल्क, वैदेशिक : 6000+डाक खर्च, एक प्रति 1000+डाक शुल्क

विज्ञापन एवं निवेदन

विज्ञापन के संदर्भ में जानकारी प्राप्त करने हेतु प्रधान सम्पादिका के पते पर संपर्क करें। आन्वीक्षिकी एक स्ववित्तपोषित पत्रिका है,अत: किसी भी प्रकार का आर्थिक सहयोग सराहनीय होगा। कृपया अपनी सहयोग राशि चेक अथवा ड्राफ्ट के माध्यम से निम्नलिखित पते पर प्रेषित करें।

सभी पत्राचार निम्नलिखित पते पर ही प्रेषित करें-

बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया,लंका वाराणसी उ.प्र. भारत,पिन कोड 221005 मोबाइल नं. 09935784387, टेलीफोन नं. 0542-2310539.,E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com,www.anvikshikijournal.com

मिलने का समय : 3-5 दिन में(रविवार अवकाश)

पत्रिका संयोजन : महेश्वर शुक्ल,maheshwar.shukla@rediffmail.com

प्रकाशन :एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण

प्रकाशन तिथि : 1 मई 2014

मनीषा प्रकाशन

(पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008 बी.32/16 ए. 2/1,गोपालकुंज,नरिया, लंका वाराणसी उ.प्र. भारत)

आन्वीक्षिकी

भारतीय शोध पत्रिका

वर्ष-8 अंक-3 मई-2014

शोध प्रपत्र

ऋग्वेदीय पुरुषसूक्त : ऐतिहासिक-समाजशास्त्रीय अध्ययन- डॉ. अर्चना शर्मा 1-4
श्रीमद्भागवत पुराण के उपाख्यानों में सांख्य एवं योग- डॉ. इन्दुमती सिंह 5-14

संस्कृत गज़ल विधा पर एक दृष्टि- डॉ. सूर्यकान्त त्रिपाठी 15-17
महाकवि कालिदास के काव्यों की शैली- रमेश चन्द 18-20

914 / 1000 एक चिन्तन- डॉ. मनीषा आमटे 25-28
महिलाओं के मानव अधिकारों के संरक्षण में गैर सरकारी संगठनों का योगदान- डॉ. श्रीमती प्रतिभा श्रीवास्तव 29-32

'भारत में आर्थिक सुधारों का गरीबी पर प्रभाव- डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय 39-44
महाकाव्य "नामायण" : गुरु घासीदास का सत्य- डॉ. रमेश टण्डन 45-50

वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी : पत्रकारिता के क्षेत्र में- डॉ. आरती बंसल 51-53
मालवी की बोलियाँ- डॉ. कला जोशी 58-70

कर्मबद्धपर्याय -पूर्व तथा पश्चिम दृष्टिकोण- डॉ. संगीता जैन 71-75
न्यायिक सक्रियता- डॉ. मनोज कुमार राय 76-77

मोहनदास करमचंद गांधी : जीवन समाज एवं राजनीति दर्शन- डॉ. विश्वनाथ मिश्र 78-86
उदारीकरण के संदर्भ में राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का प्रभाव- डॉ. मनोज कुमार राय 87-88

गुप्तकालीन साहित्यिक स्त्रोत- रितु यादव 93-94
मानव व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में संगीत का योगदान- सुमिता बनर्जी 95-98

मनुस्मृति में नारी के अधिकार एवं कर्तव्य के सकारात्मक पक्ष- रमेश चन्द 99-102

प्रिंट ISSN 0973-9777, वेबसाइट ISSN 0973-9777

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,1-4**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 फरवरी 2014

ऋग्वेदीय पुरुषसूक्त : ऐतिहासिक-समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. अर्चना शर्मा*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *ऋग्वेदीय पुरुषसूक्त :ऐतिहासिक-समाजशास्त्रीय अध्ययन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *अर्चना शर्मा* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

पुरुष सूक्त ऋग्वेद के दशम मण्डल का नब्बेवाँ (90) सूक्त है। इस सूक्त के ऋषि ''नारायण'' देवता पुरुष और छन्द अनुष्टुप् तथा त्रिष्टुप् है। इस सूक्त की मन्त्र संख्या कुल सोलह है। यजुर्वेद के इक्कतीसवें अध्याय में भी ये मन्त्र उपलब्ध होते हैं। अथर्ववेद के छठें सूक्त में भी ये सोलह मन्त्र प्राप्त होते हैं। पुरुष सूक्त एक सुप्रसिद्ध सूक्त है। इसकी महत्ता का वैदिक साहित्य में अनेक स्थलों पर वर्णन किया गया है। यह सूक्त स्तवनात्मक न होकर वर्णनात्मक है तथा इसमें तथ्यों का भी स्पष्ट निरूपण किया गया है।[1] ऋग्वेद के सूक्तों में पुरुषसूक्त[2] ने भारतीय परम्परा को बड़ा प्रभावित किया है। यह दार्शनिकता तथा अन्तर्दृष्टि का निदर्शन है। वस्तुतः इसकी ऋचा[3] द्वारा वर्ण व्यवस्था की प्राचीनता स्वीकृत होती है, लेकिन इसमें 'वर्ण' प्रत्यय का उल्लेख नहीं है। 'वर्ण' की अनुपस्थिति के कारण बहुत से विचारकों ने मूल ऋग्वेद की इस ऋचा पर संदेह करते हुए, क्षेपक तक कह दिया है। किन्तु एक ऋचा[4] द्वारा वर्ण व्यवस्था पर सन्देह समाप्त हो जाता है। इस सूक्त के ऋषि नारायण हैं।[5] जो उत्तर वैदिक साहित्य में एक प्रभावशाली देवता के रूप में प्रकट होते हैं और आगे चलकर विष्णु के पर्यायवाची हो जाते हैं। पुरुष भी विष्णु का पर्यायवाची है। पुराणों से लेकर हिन्दी साहित्य में तुलसीदास तक वैष्णवों ने अपने आराध्य का विश्वरूप[6] में रोचक वर्णन प्रस्तुत किया है। विश्वरूप की परिकल्पना का मूल आधार वास्तव में यही सूक्त है। ईसा की तृतीय शताब्दी से लेकर ग्यारहवीं-बारहवीं शताब्दी तक विष्णु की विश्वरूप मूर्तियाँ[7] बहुतायतः प्राप्त हुई हैं। इनके प्रभाव स्वरूप शिव की विश्वरूप[8] मूर्तियाँ भी बनने लगीं और लोकप्रिय हुईं।

इस पुरुष की इतनी विशाल महिमा है। इससे एक बड़ा और श्रेष्ठ पुरुष है। सब भूतमात्र जो इस विश्व में हैं, वह सब इसके एक चरणवत हैं। इसके तीन चरण दिव्य लोक में अमृतवत हैं- *एतावानस्य महिमाऽतो ज्यायांश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वाभूतानि त्रिपादयस्यामृतं दिवि।* (ऋग्वेद 10.90.3)

* असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

त्रिपाद पुरुष ऊपर द्युलोक में रहा है। इस पुरुष का एक भाग यहाँ इस विश्व के रूप में पुनः-पुनः उत्पन्न होता रहता है। पश्चात् उसने अन्न खाने वाले और अन्न न खाने वाले विश्व को चारों ओर से व्याप्त कर लिया है- *त्रिपादूर्ध्व उदैतपुरुषः पादोऽस्ये हाभवत् पुनः। ततोविश्वङ् व्यक्रामत् साशनानशने अभि।* (ऋग्वेद 10.90.4)

उस परमात्मा से विराट् पुरुष उत्पन्न हुआ। विराट के ऊपर एक अधिष्ठाता पुरुष हुआ। वह उत्पन्न होने पर विभक्त होने लगा। प्रथम भूमि आदि गोल हुए, बाद में उस पर शरीर हुए- *तस्माद्विराट जायत विराजो अधि पूरुषः। स जातो अत्यरिच्यत पश्चाद् भूमिमथोपुरः।* (ऋग्वेद 10.90.5)

इस प्रकार धार्मिक दृष्टि से इस सूक्त की जितनी लोकप्रियता हुई, ऐतिहासिक-सामाजिक दृष्टि से उतना ही विवादास्पद हुआ। इसलिए कि इस सूक्त में चार वर्णों की उत्पत्ति पुरुष[9] से बतायी गयी है। ब्राह्मण की मुख से, क्षत्रिय की बाहु से, वैश्य की उरु (जंघा) से और शूद्र की पैरों से बतायी गयी है।

मुख से वर्णित होने के कारण ब्राह्मण अपनी श्रेष्ठता और पैर के कारण शूद्रों को निम्नता का आधार बनाया और समाज विखरने लगा। अतएव आज की नयी परिस्थितियों में जातिगत श्रेष्ठता एवं निम्नता के लिए पुरुष सूक्त कोसा जा रहा है और इसी कारण वेदविद्या को ब्राह्मणों की स्वार्थपरता से जोड़कर तिरस्कृत किया जा रहा है। यह शायद इसलिए हो रहा है कि लोगों ने चार वर्णों सम्बन्धी पुरुष सूक्त के मंत्र को संदर्भ से अलग करके देखा है। इसके विश्लेषण की पुनः आवश्यकता है।

पी0एच0 प्रभु[10] के अनुसार समग्र सामाजिक व्यवस्था यहाँ मानव शरीर के रूप में प्रस्तुत की गयी है और उसके अंगों से सामाजिक वर्गों की उत्पत्ति श्रमविभाजन के सिद्धान्त पर बतायी गयी है। इमाइल दुर्खीम[11] ने समाज की व्यवस्था के सन्दर्भ में सामाजिक एकता तथा श्रम-विभाजन की अवधारणा की विवेचना प्रस्तुत की है। आदिम समाज (स्थिर तथा जड़ समाज) यांत्रिकता पर तथा कालान्तर में विकासमान आधुनिक समाज सावयवी एकता के सिद्धान्त पर आधारित है। सावयवी एकता (जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है- सभी अंगों की पारस्परिक एकता तथा अन्तर्निर्भरता) श्रम विभाजन द्वारा ही निर्मित होती है। यांत्रिक एकता वाले समाज में श्रम-विभाजन एवं विशेषीकरण नहीं था। राजा पुजारी या शिकारी कुछ भी हो सकता था। लेकिन सावयवी एकता में श्रम-विभाजन तथा विशेषीकरण स्पष्ट होने लगा। इसे समाज व्यवस्था को बनाये रखने के लिए प्रकार्यात्मक ढंग से भी देखा गया है।

सामाजिक संरचना को व्यवस्थित रूप से गति प्रदान करने के लिए विराट् पुरुष के शरीर के अंगों के चार भागों से चारों वर्णों की उत्पत्ति ऋग्वेद[12], रामायण[13], महाभारत[14] आदि में स्पष्ट रूप से वर्णित है। कर्म[15] के आधार पर चारों वर्णों का सम्बन्ध गुण[16] से है। गुण को वर्ण व्यवस्था का मनोनैतिक आधार[17] स्वीकार किया है। वायुपुराण एवं विष्णु पुराण में सभी वर्णों को अंगों से उत्पन्न बताया गया है। *वक्त्राद्यस्य ब्राह्मणा संप्रसूताः यद्वक्षस्तः क्षत्रिया पूर्वभागे। वैश्याश्चोरोर्प्यस्य पूर्व भागे सर्वे वर्णा गात्रतः संप्रभूताः।* (वायुपुराण, 9/113) एवं *ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्या शूद्राश्च द्विजसत्तम। पादोरुवक्षः स्थलतो मुखतश्च समुद्गताः।।* (विष्णुपुराण, 1.6.6)

इसे विश्लेषित करते हुए कहा जा सकता है कि इस सूक्त में पुरुष इसलिए देवता है कि मंत्रों में एक देवता होता है। यह मन्दिरों में पूजित होने वाला देवता नहीं है। जिसके अंगों से वर्णों की उत्पत्ति हुई हो। प्रथम मंत्र[18] में ही वर्णन है- यह पुरुष ऐसा है जिसके हजार सिर हैं, हजार आँखें हैं, हजार पैर हैं और इस तरह पृथ्वी को घेर कर स्थित है। इस बात को समझने की आवश्यकता है। निश्चित ही यह पुरुष विश्व है-कालातीत है। जैसा कि आगे वर्णन मिलता है- यह सब कुछ पुरुष है, जो हो चुका है वह भी, जो होगा वह भी।[19] निश्चित ही यह विराट पुरुष है इसी विराट पुरुष के सन्दर्भ में ऋषि स्वयं पूछता है- इस पुरुष का मुख कौन है? बाहु कौन है? उरु कौन है? और पैर किसे कहा जाता है।[20] ''ब्राह्मणोऽस्य मुखमासीद्बाहूः राजन्यः कृतः। उरूतदस्य यद्वैश्यः पदभ्यां शूद्रो अजायत।।''(ऋग्वेद, 10.90.12)

इसका मुख ब्राह्मण हुआ, बाहु राजन्य हो गये, जंघाएं वैश्य और पैरों से शूद्र पैदा हुए। आगे वर्णन है- चन्द्रमा मन से पैदा हुआ, सूर्य आंखों से, इन्द्र एवं अग्नि मुख से, वायु घ्राण से, नाभि से अन्तरिक्ष, पैर से भूमि, कान से दिशाएं इत्यादि।[21] यहाँ किसी के लिए आसीत्, किसी के लिए कृतः, किसी के लिए अजायत् जैसी भिन्न क्रियाओं का प्रयोग क्यों हुआ? यह विद्वानों के लिए विचारणीय अवश्य है, किन्तु समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से इसका अधिक महत्व नहीं है। यह बात

अत्यन्त रूचिकर है कि भूमि का सम्बन्ध पुरुष के पैर से जोड़ा गया है। पृथ्वी सूक्त से परिचय रखने वाले जानते हैं कि वेद में पृथ्वी की कितनी महिमा है। अतएव पुरुष के पैर से सम्बद्ध की जाने वाली भूमि को छोटा नहीं माना जा सकता है न ही इसी तर्ज पर शूद्र को। वास्तव में शरीर के समस्त अंगों का सन्तुलन आवश्यक है, अन्यथा विकलांगता आ जायेगी। अर्थात् शूद्र का भी महत्व किसी भी रूप में ब्राह्मण से कम नहीं है। इसी को पृथ्वी सूक्त में 'माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः'[22] के रूप में वर्णित किया गया है। इसका और भी महत्व आगे वर्णित है- 'आश्विनों ने जिसे मापा, विष्णु ने अपने तीन पाद प्रक्षेपों को रखा, शक्ति के स्वामी शचीपति (इन्द्र) ने जिसे अपने लाभ के लिए शत्रुओं से मुक्त किया, वह भूमि मुझे उसी प्रकार दूध दे रही है, जिस प्रकार माता अपने पुत्र को स्वतः अनुराग से देती है।[23]

तुलनात्मक लोक साहित्य (Folk Lore) के विद्वान इस बात को अच्छी तरह जानते हैं कि अनेक देशों की पुरातन परम्पराओं में एक Cosmic Giant (विराट् पुरुष) से सृष्टि की उत्पत्ति बतायी गयी है। यही बात पुरुष सूक्त में है। पुरुष सूक्त सभी कालों के विश्व को, ब्रह्माण्ड को एक रूप में कल्पित कर रहा है जो सृष्टि का आधार है। समाज भी अपने व्यापक रूप में ऐसा ही पुरुष है। यहाँ उल्लिखित चारों वर्णों का सम्बन्ध उनकी जातिगत श्रेष्ठता से नहीं है अपितु उनके कर्मों से सम्बन्धित है। मुख से मंत्रोच्चार करने वाले ब्राह्मणों को पुरुष का मुख, हाथ से अस्त्र-शस्त्र प्रहार करने वाले क्षत्रियों को पुरुष का बाहु, संग्रह के आधार पर वैश्य को उरु और मेहनतकश लोगों को अथवा शूद्रों को पैर कहना कोई आश्चर्य की बात नहीं है। यहाँ तत्कालीन समाज के विभिन्न प्रकार्य (FunctionS) सावयवी रूप से जुड़े हुए प्रस्तुत किये गये हैं। ये अनिवार्य प्रकार्य हैं- यहाँ न कोई अधिक महत्वपूर्ण है न कोई कम महत्वपूर्ण। क्योंकि इनके बिना समाज नहीं चल सकता था। मैलिनॉस्की[24] ने प्रकार्यात्मक संगठन को अपनी रचनाओं में बहुत अच्छी तरह प्रस्तुत किया। इन्होंने व्यक्ति के सात मौलिक आवश्यकताओं के सन्दर्भ में प्रकार्य को देखा है। रेडक्लिफ ब्राउन ने समाज की आवश्यकताओं के रूप में प्रकार्य की विवेचना की है। ब्राउन ने प्रकार्य की व्याख्या दुर्खीम की पद्धति से की है। अमेरिकन विद्वान रूथ बेनेडिक्ट ने Cultural configuration और मार्गरेट मीड ने Cultural pattern की अवधारणाओं द्वारा आगे बढ़ाया। प्राचीन भारतीय समाज के लिए यह (प्रकार्य) उतना ही सत्य है, जितना स्वयं समाज। यहाँ वर्ण समाज के विभिन्न प्रकार्यों के व्यंजक थे। उनमें न कोई छोटा था, न कोई बड़ा। प्राचीन काल में अपने कार्यानुसार एक व्यक्ति ब्राह्मण हो जाता था एक क्षत्रिय। या कर्मणा उसका वर्ण परिवर्तित हो सकता था। इसे समाजशास्त्रीय अवधारणा वर्ग के रूप में समझा जा सकता है। यह उदार, नमनीय एवं परिवर्तनीय है। जाति की तरह जन्मना नहीं है। यहाँ भी वर्ण की व्यवस्था जन्मना नहीं थी, कर्मणा थी। एक ही कुल में उत्पन्न होने वाला एक व्यक्ति ब्राह्मण हो सकता था दूसरा कोई अन्य वर्ण- *कारुरहं ततोभिष गुपल आक्षिणी नना/ नानाधियो वसूयवोऽनुगाइवतस्थि मेन्द्रायेन्दो परिस्रव।।* (ऋग्वेद 9.112.3)

अतएव ऋग्वेद के पुरुष सूक्त को किसी भी वर्ण की श्रेष्ठता अथवा निम्नता का प्रतिपादक नहीं माना जाना चाहिए। नेसफिल्ड ने जाति व्यवस्था की उत्पत्ति में व्यवसाय को ही एकमात्र आधार बताया है लेकिन आज व्यवसाय जातिगत ही नहीं रह गये हैं। ब्राह्मण सैलून, क्षत्रिय जूते का व्यवसाय करते देखा जा सकता है, हां जातीय जजमानी व्यवस्था जो गांव की परम्परित रूढ़ व्यवस्था है वहीं पर कमोवेश जातिगत व्यवसाय का स्वरूप परिलक्षित होता है अन्यथा अर्थतंत्र के युग में नगरीकरण के प्रभाव से लगभग परिवर्तित हो चुका है। समाजशास्त्रीय दृष्टि से अवलोकन करने पर इस सूक्त की सबसे बड़ी विशेषता यह नजर आती है कि इसमें समाज को पुरुष रूप में प्रस्तुत करके इसे ऊँचाई पर पहुँचा दिया गया है। अगर कालान्तर में जातिगत श्रेष्ठता दिखायी देती है तो इसके लिए ऐतिहासिक परिवर्तन को ही दोष देना चाहिए। यदि समाज में आज सुधार हो रहा है (जातिगत श्रेणीकरण एवं विशेषीकरण में कमी) तो इससे पुरुष सूक्त के ऋषि नारायण को प्रसन्नता ही होगी। नमो नारायणाय।

संदर्भ सूची

[1] वेदालंकार, जयदेव, वैदिक संस्कृति- दिल्ली 2009, पृ0 151

[2] ऋग्वेद का सुबोध भाष्य, चतुर्थ भाग, मण्डल 10, सूक्त 90, डॉ0 श्रीपाद दामोदर सातवलेकर, पारडी, 1988, पृ0 194।

[3] *ऋग्वेद,* 10.90.12

[4] वही, 1.113.16

[5] *ऋग्वेद,* 10.90

[6] वही, (i) श्रीमद्भगवत्गीता, तत्त्व विवेचिनी हिन्दी-टीकासहित, 11.16, अनेक बाहूदरवक्त्रनेत्रं पश्यामित्वांसर्वतोऽनन्तरूपम्। नान्तं न मध्यं न पुनस्तवादिंपश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप'।

(ii) भारती, अंक 4, 1960-61, पृ0 140, बी0एच0यू0, वाराणसी, टू विष्णु इमेजेज एण्ड देयर कल्ट एफिलिएशन, प्रो0 महेश्वरी प्रसाद, वैश्वरूप्यं समभ्यस्य मीनाद्याकृति कैतवात। स्वाभित्र निर्मिताशेष विश्वो विष्णुः पुनातु वः। इपिग्राफिया इण्डिका II, पृ0 180, साभार उद्धृत।

(iii) जोशी, नीलकण्ठ पुरुषोत्तम, प्राचीन मूर्ति विज्ञान, बिहार राष्ट्र भाषा परिषद्, पटना, 1977, पृ0 108, सिंह-वराह-विष्णु का अधिक विकसित रूप विश्वरूप है।

[7] वही, (iii)

[8] वही, (iii)

[9] *ऋग्वेद,* 10.90.12

[10] प्रभु, पी0एच0 -हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन, पापुलर प्रकाशन, बाम्बे, 2004, पृ0 286

[11] दुर्खीम, इमाइल -दि डिवीजन ऑफ लेबर, ट्रांसलेटेड बाई जार्ज सिम्पसन, फ्री प्रेस, ग्लेंको, 1947

[12] *ऋग्वेद,* 10.90.12

[13] *रामायण* 3.14.30; मुखतो ब्रह्मणा जाता उरसः क्षत्रियास्तथा। उरुभ्यां जज्ञिरे वैश्याः पद्भ्यां शूद्रा इति श्रुतिः।।

[14] *महाभारत,* शान्तिपर्व, ब्रह्मणा सुखतः सृष्टो ब्राह्मणो राजसत्तम्। बाहुभ्यां क्षत्रियः सृष्टः ऊरुभ्यां वैश्य एव च।।

[15] गीता, 4.13, चातुर्वर्ण्य मया सृष्टं गुणकर्म विभागशः। तस्य कर्त्तारमपि मां विद्धयकर्तार मव्ययम्।।

[16] गीता, 14.5; सत्त्वं रजस्तम इति गुणाः प्रकृति संभवाः।

[17] प्रभु, पी0एच0 -हिन्दू सोशल आर्गनाइजेशन, पृ0 315 In this sense the gunas may be said to be Psycho-Moral bases' of the varna organisation.

[18] *ऋग्वेद,* 10.90.1; सहस्रशीर्षापुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात/ स भूमि विश्वतो वृत्वाऽत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्।।

[19] *ऋग्वेद,* 10.90.2; पुरुष एवेदं सर्वं पद्भूतं यच्च भव्यम्। उतामृतत्वस्ये शानो यदन्नेनाति रोहति।।

[20] *ऋग्वेद,* 10.90.11; यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयन्। मुखं किमस्य कौ बाहू का ऊरु पादा उच्यते।

[21] *ऋग्वेद,* 10.90.13; चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्य अजायत्। मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत।।

[22] *अथर्ववेद,* 12.1.12; माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः।

[23] *अथर्ववेद,* 12.1.70; सा नो भूमि र्विसृजतां माता पुत्राय मे पयः।

[24] MALINOWSKI, B. '*A. Scientific Theory of Culture',* Univ. of North Carolina Press, 1944, Chapter-IV.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,5-14**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 27 मार्च 2014

श्रीमद्भागवत पुराण के उपाख्यानों में सांख्य एवं योग

डॉ. इन्दुमती सिंह*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *श्रीमद्भागवत पुराण के उपाख्यानों में सांख्य एवं योग* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *इन्दुमती सिंह* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

श्रीमद्भागवत में सांख्य एवं योग दर्शन का विस्तृत विवेचन हुआ है। इस दर्शन का विस्तृत वर्णन होने के बावजूद इसमें आत्मा के अनेकत्व का दर्शन नहीं होता, जिससे यह प्रतीत होता है कि यह सांख्य दर्शन, दर्शन सांख्यकारिका आदि ग्रन्थों का सारांश नहीं है, क्योंकि यह आत्मा के एकत्व के साथ ही साथ भक्तियोग की महत्ता को प्रतिपादित करता है। इस सांख्य तत्व निर्णायक 'आसुरि' को उपदेश किया।[1] भागवत पुराण में एकात्मवाद को स्वीकार किया गया है। इसी एक सत्ता को ही पुरुष आत्मा और परमात्मा नाम से अभिहित किया जाता है। वस्तुतः विराट पुरुष ही प्रथम जीवन होने के कारण समस्त जीवों का आत्मा, जीव रूप होने के कारण परमात्मा का अंश और प्रथम अभिव्यक्ति होने के कारण भगवान का आदि अवतार है।[2] सृष्टि के पूर्व समस्त आत्माओं के आत्मा एक पूर्ण परमात्मा ही था। ''न द्रष्टा था, न दृश्य।''[3] परमात्मा का वास्तविक स्वरूप एक रस, शान्त, अभय, ज्ञान स्वरूप है।[4]

सृष्टिकाल के पूर्व से ही ब्रह्म ही था, वह विकल्प रहित अद्वितीय तथा सत्य था।[5] यही ब्रह्म भाषा और उनमें से प्रतिबिम्बित जीव के रूप में दृश्य और द्रष्टा के रूप में दो भागों में परिणित हो गया, जिसे प्रकृति और पुरुष के नाम से जानते हैं।[6] सांख्य के पच्चीस तत्व माने गये हैं। एक प्रकृति एक पुरुष। प्रकृति से बुद्धि, बुद्धि से अहंकार, अहंकार से पञ्चमहाभूतों की उत्पत्ति होती है।[7] प्रकृति के एक और अनेक परिणति होने वाली नित्य सत्ता है। सत्व, रज और तम की साम्यावस्था ही प्रकृति है। पुरुष अजन्मा, अद्वैत तथा द्रष्टा साक्षी मात्र है। यहाँ अनेक पुरुष हैं, प्रकृति जड़ है। दोनों के संयोग से सृष्टि होती है। यद्यपि पुरुष अकर्ता है किन्तु बुद्धि से तादात्म्य होने के कारण पुरुष के सम्पर्क से प्रकृति चैतन्यवती सी हो जाती है और कार्य करती है। प्रकृति और पुरुष की अन्यता का बोध ही मोक्ष है। श्रीमद्भागवत में सृष्टि प्रक्रिया, कपिल उपाख्यान तथा दर्शन स्थल पर सांख्य प्रक्रिया का उल्लेख है।

* प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, इन्दिरा गांधी गर्ल्स डिग्री कॉलेज [रामपुर, तारामण्डल] गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

सांख्य

कपिल मुनि द्वारा निर्मित सांख्य दर्शन अति प्राचीन है। प्रकृति आदि तत्वों का निरुपण, जिससे होता है, वही सांख्य दर्शन है।[8] सांख्य शब्द को संख्या से निःसृत माना गया है। महाभारत के अनुसार चौबीस तत्वों की संख्या का निर्देश करने से तथा प्रकृति पुरुष से भिन्न है। इस विवेक साक्षात्कार रूप सम्यक् ज्ञान के कारण, सांख्य दर्शन के अनुसार तत्व गणना की प्रधानता के कारण इसे सांख्य दर्शन कहते हैं।[9] 'मत्स्य पुराण' में वर्णित कपिल दर्शन के अनुसार तत्वगणना की प्रधानता के कारण इसे सांख्य दर्शन के नाम से विहित किया गया है।[10] सांख्यमतानुसार जगत का कोई स्रष्टा नहीं है। प्रकृति से ही जगत की उत्पत्ति होती है[11] और यही सृष्टि का उपादान कारण है।[12] प्रकृति विचित्र जगत की सृष्टि, धर्म और अधर्म के आधार पर जीवों के भोग और मोक्ष के लिए करती है।

मनुष्य जन्म से लेकर जीवनपर्यन्त सुखों की अपेक्षा करता हुआ, दुःखों को ही प्राप्त करता है। वह सर्वदा दुखाग्नि में ही जलता रहता है। यद्यपि कि समस्त भौतिक सुख-सुविधाओं से सम्पन्न है किन्तु उसमें भी दुःख छुपा रहता है, क्योंकि इसमें कोई मानसिक संतुष्टि नहीं होती और इसी सुख की प्राप्ति कराना ही सांख्य दर्शन का प्रमुख उद्देश्य है।[13]

प्रकृति और पुरुष का ज्ञान अर्थात् आत्मज्ञान कराना ही इस सांख्य का उद्देश्य है। इस सांख्य को ही ज्ञान का सूक्ष्म भाग कहा गया है।[14] उसे ही कोई साकार ब्रह्म मानता है और कोई निराकार। इस मौलिक तथ्य (कि ब्रह्म ही साकार और निराकार दोनों से आबद्ध है) का ज्ञान ही आत्मज्ञान है।[15] यही ब्रह्म को प्रकृति और पुरुष दोनों ही रूपों में मानता है, जिसे इस प्रकार का ज्ञान नहीं हो पाता, वह भवसागर में डूबता-उतराता रहता है। इस संसार सागर से पार उतारने वाला एक मात्र साधन सांख्य दर्शन है।[16]

सांख्य दर्शन का वर्णन श्रीमद्भागवत में कपिल मुनि द्वारा अपनी माता को दिये गये उपदेश के रूप में है। यह उपदेश कपिलमुनि ने तब दिया, जब उनकी माता ने स्वयं सांख्य तत्व के ज्ञाता अपने पुत्र कपिलमुनि को ज्ञान का उपदेश देने के लिए उनसे प्रार्थना करती हैं। तब उन्होंने उनका स्वागत कर पुरःसर में सांख्य तत्व का सविस्तार उपदेश किया, जो भागवत पुराण के तीसरे स्कन्ध में पच्चीसवें अध्याय पर्यन्त वर्णित है। उनकी माता देवहुती ने कहा- प्रभो ! इस दुष्ट इन्द्रियों की लालसा से मैं बहुत दुःखी हूँ और इनकी इच्छा पूरी करते रहने से घोर अज्ञानान्धकार में पड़ी हूँ।[17]

तत्पश्चात् उनके प्रश्नों का उत्तर देते हुए उन्होंने कहा कि माता ! यह मेरा निश्चय है कि आध्यात्मयोग ही मनुष्यों के आन्तरिक कल्याण का मुख्य साधन है। जहाँ अपनी माता को आत्म ज्ञान कराने हेतु उनका अवतार हुआ था। कपिलमुनि स्वयं कहते हैं- इस लोक में मेरा जन्म लिंग शरीर से मुक्त होने वाले मुनियों के लिए आत्मदर्शन में उपयोगी प्रकृति आदि तत्वों का विवेचन करने के लिए ही हुआ है। इसे पुनः प्रवर्तित करने हेतु ही मैने यह शरीर ग्रहण किया है।[18] माता देवहुति को भी मैं सम्पूर्ण कर्मों से पार उतारने वाला आत्मज्ञान प्रदान करूँगा, जिससे यह संसार सागर से पार उतर सकें।[19] क्योंकि आत्मदर्शन रूप ज्ञान ही मोक्ष का कारण है और यही हृदय ग्रन्थि का छेदन करने वाला है।[20]

आत्मज्ञान होना ही तत्वज्ञान कहलाता है, चूँकि तत्वों का ही विवेचन सांख्यशास्त्र में हुआ है, इसलिए सांख्यशास्त्र ही मोक्षदायक है।

भागवत पुराण के तृतीय स्कन्ध में सांख्य दर्शन के अनुसार ही प्रकृति और पुरुष का विवेचन हुआ है।[21] इस प्रकार सांख्य के समान ही इसमें भी चौबीस तत्व माना गया है।[22] किन्तु इसके अतिरिक्त एक तत्व जो पच्चीसवां तत्व काल माना गया है। इसलिए श्रीमद्भागवत में वर्णित कपिल का सांख्यशास्त्र सांख्यकारिका से भिन्न है।

मोक्ष का वर्णन श्रीमद्भागवत में अनेक स्थलों पर किया गया है, जिसमें मुख्य रूप से सांख्य का ही सहारा लिया गया है।[23] एकादश स्कन्ध में बन्ध और मोक्ष के वर्णन में सांख्य का ही आलम्बन किया गया है। सांख्य दर्शन के अनुसार ही भागवत में भी प्रकृति-पुरुष के विवेक से मोक्ष की प्राप्ति का वर्णन किया गया है।

योग

श्रीमद्भागवत पुराण के सांख्य के समान ही योग की अवधारणा भी बहु प्राचीन है। योगदर्शन का भी अति प्रभाव है। योग की अनेक विधियों का सविस्तार वर्णन किया गया है। श्रीमद्भागवत का योग पौराणिक योग का अंशमात्र तथा योगशास्त्र की दृष्टि से उसका स्थान औपनिषदिक योग तथा पातञ्जलि योग के मध्य आता है।

''भागवत पुराण का महत्व भक्ति-प्रतिपादन के कारण ही है। ब्रह्मात्मेक्य अथवा ज्ञान के कारण नहीं।''

भक्ति ही एक ऐसा माध्यम है, जिसके द्वारा भगवान् की प्राप्ति या परमात्मा का अहर्निश चिन्तन किया जा सकता है। परमात्मा के चिन्तन हेतु चित्त की एकाग्रता आवश्यक है एवं चित्त की एकाग्रता व मन को वश में करने हेतु योग साधना अति आवश्यक होता है। श्रीमद्भागवत में यत्र-तत्र-सर्वत्र योग की क्रियाओं का प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष स्वरूप दृष्टिगोचर होता है। स्वयं भगवान् श्रीकृष्ण ने उद्धव का योगत्रय का उपदेश दिया है।[24] इसमें योग शब्द का प्रयोग कर्म, ज्ञान और भक्ति तथा स्वतन्त्र दोनों ही रूपों में हुआ है। युज, धातु में ध प्रत्यय लगाने पर 'योग' शब्द निःसृत होता है। पातञ्जलि योग सूत्र को परिभाषित करते हुए कहा गया है- ''चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।''[25]

चित्त की वृत्तियों का निरोध मात्र पारमार्थिक दृष्टि से ही अपेक्षित नहीं है। अपितु जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में योग की आवश्यकता है। जैसे- विद्यार्थी का उद्देश्य ज्ञानार्जन और जब तक चित्त को एकाग्र नहीं कर लेता, तब तक उद्देश्य की पूर्ति सम्भव नहीं है। जीवनपर्यन्त योग की अभीष्टता अन्यतम है। यद्यपि योग की आवश्यकता जीवन के हर पल, हर क्रियाकलाप में पड़ती है और अति उपयोगी भी है, फिर भी इसका प्रमुख उद्देश्य बहिर्मुखी उच्छृंखल इन्द्रियों को सांसारिक विषयों से हटाकर इनकी प्रवृत्ति को अन्तर्मुखी बनाना है।

उपनिषदों में प्राप्त देहादि का रूपक भागवत पुराण में बड़े ही सुन्दर रूप में वर्णित है। सप्तम् स्कन्ध में नारद मुनि का कथन है- यह शरीर रथ है, इन्द्रियाँ घोड़े, इन्द्रियों का स्वामी मन लगाम, शब्दादि विषय मार्ग हैं। बुद्धि सारथी, चित्त ही भगवान् के द्वारा निर्मित बाँधने का विशाल रस्सी दश प्राण धुरी है, धर्म और अधर्म पहिये हैं और इनके अभिमानी जीव को रथी कहा गया है। ऊँकार ही उस रथी का धनुष है, शूद्र जीवात्मा बाण है और परमात्मा लक्ष्य है।[26] यदि रथ के अश्वों को लगाम द्वारा सुनियोजित नहीं रखा गया तो वे रथ को मन रूपी प्रगृह्य से इन्द्रिय रूपी अश्वों को सुनियोजित करके उन्हें सांसारिक विषयों से हटाना चाहिए और शुभ कार्य में नियुक्त करना चाहिए।[27] इसी प्रकार का रूपक कठोपनिषद में भी वर्णित है।[28]

भागवत पुराण में उल्लिखित योग भक्ति के अंश रूप में ही उपविष्ट है। योग साधना का प्रमुख लक्ष्य है- मन को एकाग्र करके भगवान् के चरणों में लगाना।

अतः चित्त को एकाग्र करके भगवान् के श्री विग्रह में से किसी एक अंग का ध्यान करके उसे परमात्मा में तल्लीन कर देना चाहिए। उस समय अपने मन को विषयों से रहित कर देना चाहिए। वही विषय का परमपद होना चाहिए, जिसे प्राप्त कर मन भगवत प्रेमानन्द से आनन्दित हो जाता है।[29] चूँकि यह संसार त्रिगुणात्मक प्रपञ्च है, इसलिए मन इन गुणों से आक्षिप्त हुआ करता है। ऐसी अवस्था में मनुष्य को धैर्य के साथ धारणा के द्वारा उसे वश में करना चाहिए। इस प्रकार मन के वश में हो जाने पर जब योगी भगवान् का साक्षात्कार करता है तब उसे भक्ति योग की प्राप्ति होती है।[30] इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भागवत में वर्णित योग भक्ति का ही एक अंग है।

श्रीमद्भागवत के अनुसार भी भक्ति योग का लक्ष्य चित्त का उपशमन है।[31] यद्यपि विवेकी पुरुष भी रजोगुण और तमोगुण के वेग से विक्षिप्त होता है, यद्यपि उसकी विषयों में दोषदृष्टि बनी रहती है, इसलिए वह बड़ी सावधानी से एकाग्रचित्त होने की चेष्टा करता है, जिससे उसकी विषयों में आसक्ति नहीं होती।[32] योग साधक को शनैः-शनैः प्रमाद रहित होकर आसन प्राण वायु पर विजय प्राप्त कर समयानुसार अपने मन को परमात्मा में तल्लीन करे।

पातञ्जलि मतानुसार चित्त की वृत्तियों का निरोध है, किन्तु भागवत के अनुसार चित्त की वृत्तियों के निरोध के साथ-साथ उसका परमात्मा से संयोग होना है जो योगी उस परमावस्था को प्राप्त हुए सिद्ध पुरुष को अपनी सांसारिक क्रियाओं

का ज्ञान उसी प्रकार नहीं रहता, जिस प्रकार मदिरा पान किये हुए पुरुष को।[33] योगाभ्यास के द्वारा मन आश्रय, विश्रय और राम से रहित हो मन शान्त ब्रह्माकार हो जाता है जैसे तेल आदि के समाप्त हो जाने पर दीपशिखा अपने कारण रूप तेजस तत्व में लीन हो जाती है। इस अवस्था में मनुष्य ध्याता-ध्येय आदि से रहित एक अखण्ड परमात्मा को ही सर्वत्र अनुराग से देखता है।[34] इस प्रकार मनुष्य योग साधना से प्राप्त हुई चित्त की इस अविद्या रहित लय रूप में निवृत्ति से अपनी सुख-दुःखादि ब्रह्म रूप स्थिति में विलीन होकर परमात्म तत्व को साक्षात्कार कर लेने पर वह भोगी जिस सुख-दुःख को अपने स्वरूप में देखता था, उसे अविद्याकृत अहंकार में देखने लगा।[35]

योगमाया के द्वारा ही भगवान् स्वतन्त्र लीला करते हैं।[36] श्रीकृष्ण योगमाया को नन्द के घर कन्या के रूप में जन्म लेने का आदेश दिया था। श्रीकृष्ण की लीलाएं योग माया द्वारा ही होती हैं। वृन्दावन में रास करते समय भी योग माया का ही आश्रयण करते हैं।[37] श्रीकृष्ण जी को तो भागवत पुराण में योगेश्वर की संज्ञा से अभिहित किया गया है।[38]

योग दर्शन ईश्वरवादी हैं। इसमें सारे क्रियाकलाप ईश्वर के द्वारा ही सम्पन्न माने जाते हैं। द्वितीय स्कन्ध में स्वयं श्रीकृष्ण जी ब्रह्माजी को अपने तत्व के विषय में बताते हैं- ''अहमेवासमेवाग्रे नान्ययद यत सदृसत्परम्। पश्चाद्हं यदेतच्च योवशिष्येत सोऽस्म्यहम्।।''[39] अर्थात् सृष्टि के पूर्व में मैं ही था। सृष्टि का शत प्रपञ्च मैं ही हूँ और प्रलय में सब पदार्थों के विलीन होने पर मैं ही अवशिष्ट रहूँगा।

इससे स्पष्ट है कि इस सृष्टि के पूर्व और सृष्टि के अन्तर्गत तथा सृष्टि के बाद जो कुछ भी किसी भी रूप में था, है और रहेगा, वह ईश्वर ही है। इसी को कोई ब्रह्म, कोई परमात्मा और कोई भगवान् के नाम से बुलाते हैं।[40] यही ईश्वर विभिन्न गुणों से निर्गुण युक्त होकर एक अद्वितीय परमात्मा ही विष्णु, ब्रह्मा और रूद्र तीन नाम ग्रहण करते हैं।[41] प्रथम स्कन्ध के रूप का वर्णन किया गया है, जिसके अनुसार योगेश्वर श्रीकृष्ण प्रकृति और उसके गुणों से अतीत है फिर भी अपनी गुणमयी माया से जो प्रपञ्च की दृष्टि से है और तत्व की दृष्टि से विहीन है, उन्होंने ही संसार की रचना की थी। इसी गुणमयी माया के कारण इनसे युक्त सरीखे प्रतीत होते हैं। वे तो विज्ञानाढ़ धन है। जैसे अग्नि तो वस्तुतः एक ही है, किन्तु अनेक प्रकार की लकड़ियों में प्रकट होने से भिन्न प्रतीत होता है, उसी प्रकार परमात्मा भगवान् तो एक ही है परन्तु प्राणियों की अनेकता से अनेक प्रकार प्रतीत होता है।

भक्ति योग

भागवत पुराण में भगवत प्राप्ति के सभी साधनों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण एवं सरल साधन भक्ति को माना गया है। भागवत पुराण की रचना का प्रयोजन ही भक्ति का प्रतिपादन है, जिसमें भगवान् की उपलब्धि का सरल एवं सुगम उपाय बताया गया है। वेदार्थोपवृहित विपुलकाय महाभारत की रचना करने के बाद भी संतुष्ट न होने वाले वेदव्यास का हृदय भक्ति स्वरूप भागवत की रचना से संतुष्ट हुआ। आचार्य बलदेव उपाध्याय ने अपनी पुस्तक भागवत सम्प्रदाय में लिखा है कि- भागवत भक्ति शास्त्र का एक विशालकाय विश्वकोष माना जा सकता है, जिसमें प्रेम के सिद्धान्त का बड़ा ही मार्मिक विवेचन प्रस्तुत किया गया है।[43]

सामान्यतया इस संसार में चौरासी लाख योनियों में जीवन-मरण के सुख-दुःख का अनुभव करके विभिन्न जन्मों के कर्म से जुटाये गये पुण्य के द्वारा जीव मनुष्य योनि को प्राप्त करता है।[44] इस दुर्लभ मनुष्य योनि को प्राप्त करके भी सभी जीव को इस भवसागर से बिना भगवत् भक्ति के पार उतरना सम्भव नहीं है। भक्ति ही एक ऐसा साधन है जिससे परमात्मा को सहजता से प्राप्त किया जा सकता है और उन्हें प्राप्त करके मनुष्य शाश्वत सुख को प्राप्त करता है। भागवत पुराण के प्रथम स्कन्ध में कहा गया है। ज्ञान, वैराग्य, मुक्ति, भक्ति से अपने हृदय में परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है।[45]

भगवान की भक्ति ही ऐसी है जिससे संसार की समस्त आसक्तियाँ मिट जाती हैं।[46] श्रीमद्भागवत गीता में कहा गया है- ''पुरुषः सः परः पार्थ भक्त्यालभ्यस्त्वमन्ययम्।[47] यरयान्तः स्थानि भूतनियेन सर्वमिदं ततम्।।'' हे पार्थ ! जिस परमात्मा के अन्तर्गत सर्वभूत है और जिस सच्चिदानन्द परमात्मा से यह समस्त जगत परिपूर्ण है वह सनातन परमपुरुष तो अनन्य भक्ति से ही प्राप्त होने योग्य है।

भक्ति की निष्पत्ति सेवार्थ के 'भज' धातु से 'क्तिन' प्रत्यय करने पर होती है अर्थात् स्त्रियाँ लिन्-सूत्र से सेवा का नाम 'भक्ति' है। 'भज् सेवायाम्' सूत्रानुसार 'क्तिन्' प्रत्यय के संयोग से निष्पन्न भक्ति का यही अर्थ प्राप्त होता है। भक्ति सूत्र के अनुसार परमात्मा के प्रति उत्कट प्रेम ही भक्ति है।[48]

महर्षि शाण्डिल्य के अनुसार परमात्मा के प्रति अनुराग ही भक्ति है।[49] भागवत पुराण में भक्ति के स्वरूप का वर्णन करते हुए कहा गया है कि सर्वत्र सब में ब्रह्मदर्शन ही भक्ति है।[50] तृतीय स्कन्ध में भक्ति योग का लक्षण इस प्रकार वर्णित है- जिस प्रकार गंगा का प्रवाह अनन्तरूप से समुद्र की ओर प्रवाहित होता रहता है, उसी प्रकार मेरे गुणों के श्रवण मात्र से मन की गति का तेल धारावत अविच्छन्न रूप से मुझ सर्वान्तरयामी के प्रति हो जाना चाहिए तथा मुझ पुरुषोत्तम में निष्काम और अनन्य प्रेम होना ही भक्ति योग है।[51]

श्रीमद्भागवत पुराण के अनुसार भक्ति के दो रूप पाये जाते हैं। सगुण भक्ति तथा निर्गुण भक्ति।

ज्ञान योग

श्रीमद्भागवत पुराण के आधार पर योग तीन प्रकार के होते हैं। भक्ति योग, ज्ञान योग, कर्म योग। ज्ञान योग का अधिकारी वह होता है जो कर्मों तथा उनके फलों से विरक्त हो गये हों।[52] संसार की नश्वरता और आत्मा के स्वरूप का यथार्थ ज्ञान होना ही ज्ञानयोग है। सम्पूर्ण जगत जो दृश्य है वह माया रूप अथवा मिथ्या है। स्वप्नवत असत् है, केवल सच्चिदानन्द ब्रह्म ही सत्य हैं। संसार का नानात्व मिथ्या, एकत्व ही सत्य है। इस एकत्व का दर्शन ही ज्ञानयोग है।[53] भागवत पुराण के पाँचवें स्कन्ध में कहा गया है कि विशुद्ध परमार्थ एवं अद्वितीय तथा भीतर बाहर के भेद से रहित परिपूर्ण ज्ञान ही सत्य वस्तु है। वह सर्वान्तर्वर्ती और सर्वथा निर्विकार है। उसी का नाम भगवान् है। उसी को ज्ञानी लोग वासुदेव कहते हैं।[54] भगवान अथवा परमब्रह्म के प्रति किस प्रकार के ज्ञान से उसकी प्राप्ति हो सकती है ? इसके सम्बन्ध में भागवत का वर्णन वेदान्त के समान ही है।

आत्म व्याप्ति भूत भौतिक न्याय से सर्वत्र है आत्मा का स्वरूप संचित रूप बताया गया है, सर्वस्व उन्हीं के भीतर आभासित है।[55] यह सांसारिक प्रपञ्च उसी प्रकार माया जनित है, जिस रज्जू मायिक होता है वास्तविक नहीं।

वास्तविक ज्ञान तो अद्वैयत्व का ज्ञान है। यही ज्ञान परमब्रह्म है, परमात्मा है।[56]

सांसारिक दुःखों का कारण अज्ञानता है। इसी अज्ञानता के वशीभूत होकर पुरुष नाम रूप भेद को नष्ट करके एकत्व का दर्शन कराना। यानी योगी अपने अज्ञान जन्य भेद को नष्ट करके सर्वत्र एक ब्रह्म को ही दर्शन करता है। वह सारे प्राणियों को आत्मा में और समस्त प्राणियों में आत्मा को देखता है।[57] किन्तु ज्ञान का लक्ष्य मात्र ब्रह्मज्ञान प्राप्त करना नहीं है बल्कि अहम् ब्रह्मास्मि तक पहुँचना है। अतः इस प्रकार ज्ञान का उद्देश्य आत्म ब्रह्म की प्राप्ति है।[58]

एकादश स्कन्ध में श्रीकृष्ण ने इस सन्दर्भ में स्पष्ट कहा है कि जिससे ब्रह्म और आत्मा की एकता का साक्षात्कार हो, वही ज्ञान है। श्रीकृष्ण ने ज्ञान को दो प्रकार का बताया है- परोक्ष ज्ञान और अपरोक्ष ज्ञान।[59]

इस प्रकार स्पष्ट है कि ज्ञान ही कैवल्य का साक्षात हेतु हैं। यह मनुष्य को ब्रह्मात्यैक्य रूप ज्ञान हो जाता है आत्मा ब्रह्म में मिल जाता है और उसे स्वयंमेव मोक्ष प्राप्त हो जाता है। यही ब्रह्मस्थिति है। यह ब्रह्मात्मयैक्य ज्ञान के लिए आत्मसंयम आवश्यक है बिना इसके ज्ञान असम्भव है। भगवत गीता में इस संदर्भ में इस प्रकार कहा गया है- ज्ञानेन्द्रियों को मन से मन को बुद्धि से और बुद्धि को आत्मा से निग्रह करना चाहिए। आत्मा को परमात्मा में स्थिर करना चाहिए। इस प्रकार आत्मसंयम से ज्ञान प्राप्त होता है।[60]

कर्म योग

योग के तीन प्रकारों में कर्मयोग की भी गणना की जाती है। श्रीमद्भागवत पुराणों में कम योग का वर्णन अनेक स्थलों पर मिलता है। मनुष्य जीवनपर्यन्त कोई न कोई कर्म करता रहता है। भागवत गीता के अनुसार तो मनुष्य बिना कर्म के अपनी जीवन यात्रा भी नहीं कर सकता है। अतः मनुष्य कर्म करने के लिए विवश है।

कर्मयोग मूल रूप में दो शब्दों से मिलकर बना है- कर्म और योग। कर्म का सामान्य अर्थ है- मनुष्य के द्वारा किया जाने वाला कर्म, किन्तु उन कर्मों में वही कर्म जो विहित है अर्थात जो करने योग्य हो और योग का अर्थ है एकाग्रचित्त होकर मन को भगवान् में लगाना; अर्थात् कर्म योग का सामान्य अर्थ हुआ- उन कर्मों के द्वारा अपने मन को भगवान् में लगाना। मनुस्मृति में फल की कामना न करके अनाशक्त भाव से अपने वर्णाश्रम के अनुसार शास्त्रोक्त कर्मों को करना ही कर्मयोग है। मनुष्य को वेदोक्त स्वीकार्य कर्म आलस्य त्याग करना चाहिए जो मनुष्य इस प्रकार अपने कर्मों को करते हैं, परम गति को प्राप्त करते हैं।[61]

श्रीमद्भागवत पुराण में भी कर्म योग का वर्णन सविस्तार परिलक्षित होता है। एकादश स्कन्ध में श्रीकृष्ण ने उद्धव को इस प्रकार उपदेश दिया है- ''स्वधर्मस्थो यजन् यज्ञौरनाशीः काम उद्धव। न याति स्वर्ग नरकौ यद्यन्यन्न समाचरतेत्।।''[62] अर्थात्- हे उद्धव ! अपने धर्म और आश्रम के अनुकूल धर्म में स्थित रहकर यहाँ के जीव बिना किसी आशा और कामना के मेरी आराधना करता रहे और निषिद्ध कर्म से दूर रहकर केवल विहित कर्मों का ही आचरण करें, तो उसे स्वर्ग और नरक में नहीं जाना पड़ता है।

कर्म और अकर्म क्या है, इस सम्बन्ध में गीता में कहा गया है कि कार्य एवं अकार्य की स्थिति में शास्त्र ही प्रमाण है, अतः शास्त्र का विधान समझकर ही कर्म करना चाहिए।[63] शास्त्रों में वर्णित कर्मों के सम्बन्ध में एक-सी मान्यता रही है। वैदिक कर्म का तात्पर्य था याज्ञिक कर्मकाण्ड। इसके अतिरिक्त कर्म से ही मनुष्यों के सामाजिक एवं वैयक्तिक आचारों का भी बोध होता है। स्मृतियों में इन कर्मों के अतिरिक्त वर्णाश्रम सम्बन्धी कर्तव्यों को भी सम्मिलित कर लिया गया। कर्म सम्बन्धी विभिन्न मान्यताओं के अनुसार भगवद्भक्ति ही कर्म है।[64] इसी प्रकार का मत भागवत पुराण में भी दिया गया है। चतुर्थ स्कन्ध में वर्णित है- वास्तव में कर्म वही है जिससे श्रीहरि प्रसन्न हो।[65] भागवत पुराण में कर्मयोग के अन्तर्गत काया, मन, वाणी, इन्द्रिय, बुद्धि आत्मा अथवा प्रकृति के स्वभाव से जो भी कर्म किया जाता है, वे सभी कर्मयोग से सम्बन्धित हैं।[66] क्योंकि कर्म अकर्म का निश्चय करना कोई सरल कार्य नहीं है। इनकी विवेचना वैदिक है, लौकिक नहीं। वेद के विषय के अच्छे-अच्छे ज्ञानी भी मोहित हो जाते हैं।[67] इस प्रकार भागवतोक्त कर्म का तात्पर्य मानव द्वारा किये जाने वाले सभी कर्मों से है। किसी भी कर्म को स्वार्थ रहित भाव से करना चाहिए जो इस प्रकार के कर्म करता है उसे मोक्ष की प्राप्ति होती है।[68] ग्रन्थों में ऐसे कर्मों को निरर्थक बताया गया है, जिससे न धर्म न वैराग्य और न भगवान् की सेवा ही सम्पन्न हो।[69] कर्म ही ऐसा साधन है जिससे मनुष्य सुख-दुःख को प्राप्त करता है।[70] कर्मों का फलदाता भगवान् यज्ञपति को कहा गया है।[71] जब तक मनुष्य का सत्व, रज अथवा तमोगुण के वशीभूत रहता है, तब तक वह बिना किसी अंकुश के शुभाशुभ कर्म करता रहता है।[72]

कर्म के तीन प्रकार बताये गये हैं- सात्विक, राजस, तामस।[73] अन्य स्थल पर भी सात्विक गुणों के भेद से शुभ-अशुभ और मिश्र तीन प्रकार के कर्म बताये गये हैं।[74]

कर्म में अनाशक्त पर इसीलिए बल दिया गया है कि प्रवृत्ति मानो कर्म से संसार की प्राप्ति होती है मोक्ष की नहीं।[75] कर्म के सम्बन्ध में यह भी सत्य है कि कोई भी प्राणी कर्म प्रारम्भ किये बिना किसी फल की प्राप्ति की इच्छा नहीं करता। यदि किसी फल की कामना न हो तो किस लिए कर्म किये जाय। इस सम्बन्ध में भागवत पुराण का मत है कि कर्मों की संसिद्धि भगवान् की संतुष्टि में ही है।[76] इसलिए अपने कर्मों को भगवान् को समर्पित कर देना चाहिए। ऐसा करने से मनुष्य तीनों तापों से मुक्त हो जाता है।[77] क्योंकि कर्म ही मनुष्य को संसार चक्र में डालने वाला है, लेकिन जब वही कर्म भगवान् को समर्पित कर दिया जाता है तो उनका कर्मपना ही नष्ट कर दिया जाता है।[78]

किन्तु कर्म से मनुष्य संसार चक्र में पड़ता है उसी कर्म से मुक्ति कैसे मिल सकती है, इसके विषय में भागवत पुराण में लिखा है- जिस प्रकार प्राणियों को किसी पदार्थ के खाने से रोग हो जाता है किन्तु जब उसी पदार्थ को चिकित्सक विधि से दी जाती है तो वही उसका रोगनाशक बन जाता है।[79] ठीक उसी प्रकार मनुष्य के कर्म भी हैं। जब मनुष्य निःस्वार्थ भाव से कर्मों को करते हुए भगवान् को समर्पित कर देता है तो वही कर्म मुक्ति देने वाला हो जाता है।

गीता में वर्णित है- जो अपने कर्मों को करते हुए भगवान् को समर्पित कर देता है तो उनको शीघ्र ही संसार सागर से मुक्ति मिल जाती है।[80]

फलेच्छा त्यागकर कर्म किया जाने वाला छोटा-छोटा कर्म भी विफल नहीं जाता, क्योंकि भगवान् तो जीवों के परम हितकारी और प्रियतम आत्मा है।[81]

इस प्रकार कर्म की दिशा बदल जाने पर कर्म फल भी बदल जाते हैं। कर्म योग में भी कर्मों की दिशा को परिवर्तित करना ही उद्देश्य है। कर्म योग का उद्देश्य कर्म में प्रवृत्ति है, निवृत्ति नहीं। बिना कर्म किये मनुष्य को किसी भी वस्तु की प्राप्ति नहीं हो सकती। लेकिन कर्म योग में निष्काम कर्म में प्रवृत्ति की बात कही गयी है। गीता में आसक्ति और फल दोनों के त्याग को कर्म योग बताया गया है।[82] कहीं सम्पूर्ण कर्मों और पदार्थों में केवल आसक्ति के त्याग को कर्मयोग बताया है[83] और कहीं केवल सर्वकर्म फल के त्याग या कर्म फल न चाहने को ही कर्म योग कहा गया है। वास्तव में इनमें सिद्धान्ततः कोई भेद नहीं है।

एकादश स्कन्ध में कर्मयोग का विषद विवेचन हुआ है। जिस समय राजानिमि ने योगेश्वर से कहा कि आप लोग हमें कर्म योग का उपदेश दीजिये, जिसके द्वारा शुद्ध होकर मनुष्य शीघ्रातिशीघ्र परम नैष्कर्म्म अर्थात् कर्तृत्व, कर्म और कर्मफल की निवृत्ति करने वाला ज्ञान प्राप्त करता है। उस समय छठें योगीश्वर आविह्वेत्र जी ने बड़े ही सुन्दर ढंग से उनके प्रश्नों का उत्तर दिया- राजन् ! कर्म (शास्त्र विहित) अकर्म (निषिद्ध) और विकर्म (विहित का उल्लंघन) ये तीनों एक मात्र वेद द्वारा जाने जाते हैं। इनकी व्याख्या लौकिक रीति से नहीं होती।[85] यह वेद परोक्षवादात्मक है। यह कर्मों की निवृत्ति के लिए कर्म का विधान करता है। जैसे- बालक को मिठाई आदि का लालच देकर औषधि खिलाते हैं। वैसे यह अनभिज्ञों को स्वर्गादिक प्रलोभन देकर श्रेष्ठ कर्म में प्रवृत्ति किया जाता है। वे आगे कहते हैं कि जिसकी निवृत्ति नहीं हुई है, जिसकी इन्द्रियां बस में नहीं हैं वह मनमाने ढंग से कर्मों का परित्याग है तो यह विहीत कर्मों का आचरण न करने के कारण विकर्म रूप अधर्म ही करता है। इसीलिए वह संसार चक्र में ही फंसा रहता है।[86] अतः फल की अभिलाषा त्याग कर विश्वात्मा भगवान् को समर्पित कर जो वेदोक्त कर्म का ही अनुष्ठान करता है, उसे कर्मों की निवृत्ति से प्राप्त हो जाता है जो वेदों में स्वर्गादिरूप फल का वर्णन है। उसका तात्पर्य फल की सत्यता में नहीं, वह तो कर्मों में रुचि उत्पन्न कराने के लिए है।[87]

कर्मों में तथा उनके फल में आसक्ति का सर्वथा त्याग करके उन कर्मों को परमात्मा की प्राप्ति का साधन बना लें तो सहजता से परमात्मा की प्राप्ति कर सकता है। भागवत गीता में ऐसा ही वर्णन मिलता है।[88] कर्म के विषय जो जितने भी विधि निषेध हैं, उनके अनुसार तभी तक कर्म करना चाहिए, जब तक कर्ममय जगत और उससे प्राप्त होने वाले स्वर्गादि सुखों से वैराग्य न हो जाय।[89] इसलिए ज्ञानी पुरुष एवं अपने धर्म में निष्ठा रखने वाला पुरुष इस शरीर में रहते-रहते ही निषिद्ध कर्म का परित्याग कर देता है और रागादि मलों से भी मुक्त और पवित्र हो जाता है। इसी से अनायास ही उसे आत्म साक्षात्कार रूप विशुद्ध तत्व ज्ञान अथवा द्वैतचित्त होने पर मेरी भक्ति प्राप्त होती है।[90]

आठवें स्कन्ध में कहा गया है कि कर्म स्वरूपतः पाप नहीं है लेकिन वह कर्म का फल लोक होता है तब उसका स्वरूप पाप का होता है और जब वही कर्म सर्व समर्पण और भगवन्य होता है तब उसका स्वरूप मोक्ष का होता है।[91]

श्रीमद्भागवत गीता में कहा गया है कि स्वार्थ त्यागकर संसार की सेवा में प्रवृत्ति होना कर्मयोग सिद्धि का मूल मंत्र है। इस मन्त्र परिपालन करने से फलों की लालसा नहीं होती। कर्म फलों में स्पृहा न होने से साधक जन्म मरण के बन्धन से छूट जाता है।[92]

भागवतकार के अनुसार यह शरीर एक वृक्ष है जिसमें जीव रूपी पक्षी घोसला बनाकर रहता है।

इस वृक्ष को यमराज के दूत प्रतिक्षण काटते रहते हैं, जिसके कारण उस जीव रूपी पक्षी इस कटते हुए वृक्ष को छोड़कर उड़ जाते हैं। उसी प्रकार अनाशक्त जीव भी इस शरीर को छोड़कर मोक्ष का गामी बन जाता है। परन्तु आसक्त जीव दुःख ही भोगता रहता है।[93] इसलिए कर्मयोगी पुरुष को चाहिए कि वह यम, नियम, आसन, प्राणायाम् प्रत्याहार, धारणा, ध्यान, समाधि आदि योग मार्गों से वस्तु तत्व का निरीक्षण-परीक्षण करने वाली आत्म-विधा से तथा भगवान् की प्रतिमा की उपासना से भगवान् को प्रसन्न करे।[94]

इस प्रकार मनुष्य को वही कर्म करना चाहिए जिससे भगवान् प्रसन्न हों। किसी भी योग का यही मुख्य उद्देश्य है। मोक्ष किसी के कर्म के द्वारा किसी में भक्ति के द्वारा और किसी को योग से प्राप्त होता है।

संदर्भ-ग्रन्थ सूची

[1]पञ्चमकपिलोनाम सिद्धेशः कालविलुप्तम्। प्रोवाचासुरये सांख्य तत्व ग्रामविनिर्णयम।। भा0पु0- 1.3.10

[2]एष ह्यशेसत्वानामात्मांशः परमात्मनः। आद्योऽवातारो यत्रसौ भूतग्रामो विभायते।। भा0पु0- 3.6.8

[3]*तदैव,* 3.5.23

[4]भा0पु0- 2.7.47

[5]भा0पु0- 11.24.3

[6]भा0पु0- 3.4

[7]भा0पु0- 11.24.8

[8]भा0पु0- 3.25.31, 3.33.7

[9]सांख्य दर्शन.....परिसंख्याय तत्वतः।। महाभारत 2/294, 81.82।

[10]मत्स्य पुराण- 3/29

[11]सांख्यकारिका- ईश्वरकृत द्रष्टव्य।

[12].....सृजतीं सरूपाः प्रऔतिं प्रजाः।। भा0पु0- 3.26.5

[13]*तदैव,* 11.24.19

[14]एषं आत्म.....कालेन्भूयसा।। भा0पु0- 3.24.37

[15]आस्तीति नास्तीति.....हनुकूलम् वृहत्तत्।। भा0पु0- 6.4.32

[16]भा0पु0- 3.27.23

[17]योग अध्यात्मिकः पुसां मत्ते निःश्रेयसाय में। अत्यन्तोपरतिर्यत्र दुखस्य च सुखस्य च।। भा0पु0- 3.25.13

[18]भा0पु0- 3.24.33-37

[19]मात्र आध्यात्मिकी विद्यां शमनीं सर्वकर्मणाम्। वितरिष्ये यया चासौ भयं चातितरिष्यति।। भा0पु0- 3.24.40

[20]ज्ञानं निःश्रेयसार्थाय पुरुषस्यात्म दर्शनम्। यद्वाहुवर्णये तत्ते हृदयग्रन्थिभेदनम्।। भा0पु0- 3.26.2

[21]भा0पु0- 3.26.7 -15 (द्र0 परिशिष्ट)

[22]भा0पु0- 3.26.15

[23]भा0पु0- 3.27.1 - 30, 4/31वाँ अध्याय

[24]योगसयो मया प्रोक्ता नृणां श्रेयोविधित्सया।। भा0पु0- 11.20.6

[25]योगचित्तवृत्ति निरोधः। योगसूत्र- 1/2

[26]आहुः शरीरं रथमिन्द्रियाणि.....जीवपरमेव लक्ष्यम्।। भा0पु0- 2.7.47

[27]नियच्छेद्विषयेम्भो.....शुनार्थे धरयोद्विपा।। भा0पु0- 8.1.18

[28]कठोपनिषद- 3.3.4

[29]तत्रैकावयवं ध्यायेदः.....मनोनिर्विषयं.....यत्प्रसीदति।। भा0पु0- 2.1.19

[30]रजस्तभोभ्यामक्षिप्तं विमृढ़मन आत्मनः। आशु सम्पद्यते योग आश्रय भद्रमीक्षतः।। भा0पु0- 2.1.20-21

[31]राजस्तमोश्यां....दोषदृष्टिर्न सज्जते।। भा0पु0- 11.13.12

[32]तदैव श्लोक, 13.14

[33]देहं च तं न.....यतोऽध्यममत्स्वरूपम्। देवादुपतमथ.....मदिरामदान्धः।। भा0पु0- 3.28.37

[34]मुक्ताश्रयं यर्हि निर्विषयं.....सहसायथार्चिः।.....मन्वीक्षते।। भा0पु0- 3.28.35

[35]*तदैव*

[36]लीलाविदयतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायय।। भा0पु0- 1.1.18

[37]भा0पु0- 10.19.1

[38]भा0पु0- 1.1.32, 10.20.32

[39]भा0पु0- 2.9.32

[40]वदन्ति तत्वरत्व.....भगवान्नीति शब्यते।। भा0पु0- 1.2.11

[41]सत्व रजस्त्वम इति.....सत्वतनोर्नृणा स्युः।। भा0पु0- 1.2.23
[42]भा0पु0- 1.2.30-33 (द्र0 परिशिष्ट), पृष्ठ संख्या 503
[43]भा0पु0, पृष्ठ संख्या 175
[44]लभेजन्तुमानुष्यं कदाचित पुण्य स पपात। पुराण पर्यावलोकन समीक्षा -श्रीकृष्ण मणि त्रिपाठी, पृष्ठ संख्या 9
[45]तच्छद्दधाना मुनयोज्ञान वैराग्ययुक्ततया। पश्यन्त्यात्मनि चात्मनं भवत्याश्रुत गृहीतया।। भा0पु0- 1.2.12
[46]एवं प्रसन्नमनसो.....मुक्त सस्यजायते।। भा0पु0- 1.2.20
[47]*श्रीमद्भागवत गीता* - 8/22
[48]सा त्वरिमत्र परमप्रेमरूपा। नारद भक्ति सूत्र- 2
[49]*शाण्डिल्य भक्ति सूत्र*
[50]भा0पु0- 5.7.55
[51]*तदैव,* 3.29.10-11
[52]भा0पु0- 11.20.7
[53]*श्वेतास्वतरोपनिषद्*
[54]ज्ञानं विशुद्धम् परमार्थमेकमनन्तरं त्ववर्हिर्ब्रह्म सत्यम्। प्रत्यक प्रशान्तं भगवच्छद्वसंज्ञं यद्धासुदेवं कवयो वदन्ति।। भा0पु0- 5.12.11
[55]एवं ह्येतानि भूतानि भूते-वात्माऽऽत्मना ततः। उभयं मय्यपथं परे पश्यताभातमक्षरे।। भा0पु0- 10.82.47
[56]वदन्ति ततत्व विदस्तत्वं.....। ब्रह्मोति परमात्मोति भगवानीति शपते।। भा0पु0- 10.82.47
[57]सर्वभेतेषु चात्मनं सर्वभूतानिचात्मनि। ई क्षेतानन्यभावेन भूतोश्विव तदात्मताम्।। भा0पु0- 3.3.42
[58]एवावानेव मनुजेयोग्नेषु-य बुद्धिभिः। स्वार्थ सर्वात्मना ज्ञेयो यत्पदात्मेकदर्शनाम्।। भा0पु0- 6.6.63
[59]प्रोक्तोज्ञानं चैकात्म्य दर्शनम्।। भा0पु0- 11.19.27
[60]श्रेयान्द्रव्यामयाधज्ञाज्ज्ञानयज्ञः परंतपः। सर्वकर्माखिलं पार्थ ज्ञाने परिसमाप्यते।। भ0गीता0- 4/33
[61]नियतं करुकर्मत्वं ज्यायोह्यकर्मणः। शरीर यात्राऽपि न प्रसिद्धयेद कर्मणः।। मनुस्मृति- 3/8
[62]श्रीमद्भागवत पुराण- 11.20.10
[63]तस्माच्छास्त्रं प्रमाणं ते कार्य कार्यव्यवस्थितौ।। गीता- 16/24
[64]आउट लाइन ऑॅ इण्डियन फिलासफी -एम0 हिरियन्ना, पृष्ठ संख्या 118-19
[65].....तत्कर्महरितोषं यत्सा.....।। भा0पु0- 4.29.49
[66]कायेन वाचां मनसेन्द्रियैर्वाच बुद्धयाऽत्मना वानुसृतस्वभावात्। करोति यद्यत सकलं परस्मै नारायणयेति समर्पयेत्त।। भा0पु0- 11.2.36
[67]कर्माकर्मविकर्मेति.....तत्र मुह्यन्ति सुरयः।। भा0पु0- 11.3.43
[68]एतावाज्जीवलोकस्य.....परमेष्ठीयसो।। भा0पु0- 3.10.9, 09-05-22
[69]भा0पु0- 3.23.56-57
[70]भा0पु0- 4.11.20
[71]भा0पु0- 4.21.26-27
[72]यावत्रमनो रजसा पुरुषस्य सत्वने वा तमसा वानुरुद्धम्। चेतोभिराकूति भिरातनोति निरंकुशं कुशलं चेतरं वा।। भा0पु0- 5.11.4
[73]रजस्तमः सत्वविभक्त कर्मट्टका।। भा0पु0- .....
[74]भा0पु0- 5.14.1
[75]अथ च तस्मादुभवथापि हि कर्मास्मिन्नत्मनः/ संसारावपनमुदाहरन्ति।। भा0पु0- 5.14.23
[76]स्वनुष्ठितस्य धर्मस्य संसद्धिहरितोषण।। भा0पु0- 1.2.13
[77]एतत्ससूचितं ब्रह्मस्तापत्रयचिकित्सितम्। यदीश्वरे भगवति कर्म ब्रह्मणि भावितम्।। भा0पु0- 1.5.32
[78]एवं नृणांक्रियायोगाः सर्वे संसृति हेतवेः। स एवात्मविनाशाय कल्पन्ते कल्पिताः परे।। भा0पु0- 1.5.34
[79]आमयोयश्च भूतानां.....चिकित्सतम्।। भा0पु0- 1.5.33
[80]ये तु सर्वाणि.....।। गीता- 12/6.7
[81]भा0पु0- 8.5.47-48
[82]भागवत गीता- 2/48, 18/9

[83]तदैव, 6/4

[84]भगवद् गीता- 18/11

[85]परोक्षवादो वेदोऽयं बालानामनुशासनम्। कर्ममोक्षाय कर्माणि विधत्ते ह्यगदं यथा।। भा0पु0- 11.3.44

[86]नाचरेद वस्तु वेदोक्तं.....मुपैति सः।। भा0पु0- 11.3.45

[87]वेदोक्तमेव कुर्वाणो.....रोचनार्था फलश्रुतिः।। भा0पु0- 11.3.46

[88]भागवत गीता- 4/48

[89]तावत कर्माणि कुर्वीत.....श्रद्धायापत्र जायते।। भा0पु0- 11.20.9

[90]अस्मिलोके वर्तमानः स्वधर्मस्थो.....वा यादृच्छया।। भा0पु0- 10.20.11

[91]इहसे भगवानीशो न हि तत्र विषज्जते। आत्मलाभेन पूर्णार्थो नवसीदन्ति येनुतम्।। भा0पु0- 8.1.15

[92]न माँ कर्माणि.....वध्यते।। गीता- 4/14

[93]भाग0पु0- 11.20.15-16

[94]भा0पु0- 11.20.24

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,15-17**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 05 मार्च 2014

संस्कृत गज़ल विधा पर एक दृष्टि

डॉ. सूर्यकान्त त्रिपाठी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *संस्कृत गज़ल विधा पर एक दृष्टि* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सूर्यकान्त त्रिपाठी* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

संस्कृत गज़ल आधुनिक संस्कृत रचनाधर्मिता का नवीन प्रयोग है। यह विधा आहरित विद्या है। इस विधा का मूल उद्भव स्थान फारसी भाषा है। अपनी विशिष्टताओं के कारण अन्य भाषा में भी यह विधा लोकप्रिय हुई। गज़ल शब्द की व्युत्पत्ति मुंगाझेलत शब्द से हुई है। जिसका अभिप्राय है प्रेमिकाओं के साथ वार्तालाप। गज़ल को अरबी भाषा में कसीदा भी कहते हैं। किसी की प्रशंसा में जो कथन किया जाता है उसे कसीदा कहते हैं। ऐसा माना जाता है कि अरब देश में गज़ल नामक कोई पुरूष था जो युद्ध से त्रस्त मानवों को मनोरंजन के लिये रात्रि में प्रायः हुश्न तथा इश्क की कवितायें सुनाता था। कालान्तर में उसी के आधार पर इस विधा का नाम गज़ल पड़ गया। गज़ल में अनेक मर्मस्पर्शी भावों का समावेश होता है।

भारत में गज़ल जन-प्रिय रही है। अन्तिम मुगलशासक बहादुर शाह ज़फर और उनके आश्रित कवि मिर्ज़ा गालिब ने गज़ल को चरम सीमा पर पहुँचाया। हिन्दी में गज़ल के श्रीगणेश का श्रेय दुष्यन्त कुमार को दिया जाता है। सस्कृत में गज़ल के जनक भट्ट मथुरानाथ शास्त्री हैं; जिन्होंने गज़ल के संविधानक को स्वीकार करते हुये अनेक भावपूर्ण गज़लें लिखीं।

हर्षदेन माधव गज़ल के संदर्भ में लिखते हैं ''गज़ल का स्थायी भाव विषाद है। इश्के हकीकी और इश्के मजाजी दोनों मिजाजों से गुजरती हुई गज़ल मर्मन्तुद भावों में कला का रेशमी वस्त्र बुनती है। रेशम के कोट की तरह कवि का हृदय विषादग्रस्त होकर वेदना को गाता है। सूफीवाद की परम्परा भी वहाँ परिपुष्ट होती है।[1]

संस्कृत गज़ल विधा के व्यवस्थापन का श्रेय प्रो0 राजेन्द्र मिश्र को जाता है। प्रो0 राजेन्द्र मिश्र के अनुसार गज़ल गीत में प्रेम के विविध भावों का रमणीय वर्णन प्राप्त होता है। उसमें नायक और नायिका के प्रेम का चित्रण होता है, ''संवेदनमयी गीतिर्गजलाख्यान संशयः/ यत्र प्रणय गाम्भीर्यं नैष्ठिकत्वञ्च वर्णिते। प्राणानपि पणीकृत्य सोढ्वा च शतलांछनम् / वैरीभूतेऽपि चात्मीये प्रीतिबन्धानुपालनम्।।[2]

गज़ल की परम्परा को समृद्ध करने का श्रेय आचार्य वच्चूलाल अवस्थी को दिया जा सकता है। लोकप्रियता की दृष्टि से राजेन्द्र मिश्र तथा जगन्नाथ पाठक की गज़लें श्लाघ्य हैं।

* प्रवक्ता, संस्कृत विभाग, पंचायत इण्टर कॉलेज [परतावल] महराजगंज (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

गज़ल का संविधानक

गज़ल गीत का विविध प्रकार से बंध विस्तार होता है। यह बंध विस्तार फारसी भाषा में बहर कहलाता है। बहर का ज्ञान अर्कान के माध्यम से होता है। अर्कान हैं- फऊलुन, फाइलुन, मुस्तफइलुन, मफाईलुन, फाइलातुन, मुतफाइलुन, मफाइलतन, फऊलातुन, मफउलात, मुस्तफअलुन इन्हीं के द्वारा गज़ल का बंध विस्तार होता है।

प्रो0 मिश्र गज़ल का संस्कृत में नामकरण गलज्जलिका करते हैं। मतला, शेर तथा मकता का आरम्भिका, मध्यिका तथा अन्त्यिका शब्द से व्यवहार करते हैं। आरम्भिका का उदाहरण देते हुये आचार्य बच्चूलाल अवस्थी का यह पद्य उपस्थापित करते हैं- *आरम्भिका :* पिकाः कूजन्ति माकन्देषु कूजेयुः किमायातम् ? / समीरा दाक्षिणात्या मन्दमंचेयुः किमायातम् ?, *मध्यिका :* इदं पाणौ सुरापात्रं सुरा कुम्भेऽन्तिके रामा/ उद्न्वन्तः समे सर्वत्र शुष्येयुः किमायातम् ?, *अन्त्यिका :* न हि ज्ञानेन सिद्ध्यत्यर्थ इत्याश्रित्य विज्ञानम् / कदर्यां आर्यमर्यादां विलुम्पेयुः किमायातम् ?

प्रो0 मिश्र का मानना है कि इस नियम में कोई गुणवत्ता नहीं है, अपितु यह एक रूढ़िमात्र है। उच्चकोटि के गज़लकार को अपनी रूचि के अनुसार ही स्वतंत्रतापूर्वक प्रयोग करना चाहिये

प्रो0 मिश्र का मानना है कि संस्कृत कवियों के द्वारा केवल फारसी गज़ल के संविधानक को स्वीकार करना चाहिये। वर्ण्य विषय स्वीकार नहीं करना चाहिये। फारसी गज़लें तत्कालीन परिस्थितियों के आधार पर लिखी गयी थी। आज की गज़लों में जन-कल्याण की भावना तथा उदात्त समाज का चित्रण होता है। संस्कृत गज़लकार स्वकीय संस्कृति के अनुकूल गज़लगीति का प्रणयन कर रहे हैं।

प्रो0 मिश्र इस संदर्भ में कहते हैं ''संविधानकमेव हि फारसी गजलाश्रितम्। ग्राह्यं न च प्रतिपाद्यमित्यभिराजसम्मतम्।।''[4] प्रो0 मिश्र का मन्तव्य सर्वथा वैज्ञानिक एवं समीचीन है।

संस्कृत की गलज्जलिकाओं में संवेदनाओं का बाहुल्य है। इन गलज्जलिकाओं में ज्वलन्त सामाजिक समस्याओं को वर्णित किया गया है। भट्टमथुरानाथ शास्त्री, बच्चूलाल अवस्थी, जगन्नाथ पाठक, राजेन्द्र मिश्र इत्यादि रचनाकारों के सारस्वत श्रम से निरन्तर सेवित होती हुई गज़ल विधा चरमोत्कर्ष को प्राप्त हुई।

स्वनामधन्य गज़लकार आचार्य बच्चूलाल अवस्थी की यह पंक्तियाँ उल्लेखनीय हैं ''पिकाः मौनं मजेरन् मासि वासन्ते कथङ्कारम्। शरः शाकुन्तलः सिद्ध्येन्त दुष्यन्ते कथङ्कारम्।।''[5]

आचार्य बच्चूलाल अवस्थी की गज़लों में मानवीय भावनाओं को उत्कटकोटिक रूप से वर्णित किया गया है।

सामाजिक विद्रूपता को अभिव्यंजित करने वाली जगन्नाथ पाठक की यह गज़ल दर्शनीय है ''केऽपि मन्ये हसन्तीवमाम्, नैव हेतुर द्विषन्तीवमाम्। ये हि गर्वान्मयोत्थापिताः ते तु गर्ते क्षिपन्तीवमाम्।।''[6]

संस्कृत गज़लकारों ने संकीर्णता का उल्लंघन करते हुये उदात्त भावों का समाहार किया है। गलज्जलिका के रूप में गज़ल का नामकरण तथा लक्षण करने वाले प्रो0 राजेन्द्र मिश्र आधुनिक संस्कृत के श्रेष्ठ रचनाकार हैं। प्रो0 मिश्र ने गज़ल लेखन में परम्परागत के प्रति श्रद्धाभाव रखते हुये सत्ता का जबरदस्त प्रतिरोध किया है। प्रो0 मिश्र की गज़लों में नारी-विमर्श की यह दृष्टि द्रष्टव्य है ''निर्भय सम्प्रविष्टाः कः एते वने ? / यत्र काकोदराश्चन्दने-2/ कण्वपुत्र्या उदन्तं स्मरन्तश्शुचा/ सन्दिहन्येणकाः स्पन्दने-स्पन्दने।''[7]

प्रो0 राजेन्द्र मिश्र ने मत्तवारणी और शाल-भञ्जिका की गज़ल गीतियों में सम्पूर्ण लोक के प्रति संवेदनाओं को संरक्षित किया है।

उपर्युक्त विवेचना के आलोक में कहा जा सकता है कि आचार्य बच्चूलाल अवस्थी ने श्रृंगारिक अनुभवों को तो उर्दू काव्य शैली में ही लिखा; परन्तु उत्कटकोटिक कल्पना का भी परिचय दिया। पं0 जगन्नाथ पाठक और राजेन्द्र मिश्र जैसे उत्कृष्ट कवियों ने गज़ल को नवीन रूप में उपस्थापित किया। संस्कृत गज़लकारों ने मानवीय संवेदना की उत्कृष्ट अभिव्यंजना की। मार्मिक भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से बच्चूलाल अवस्थी की गज़लें सर्वोत्कृष्ट कही जा सकती है। हर्षदेनमाधव, विन्ध्येश्वरी प्रसाद मिश्र, इच्छाराम द्विवेदी, जनार्दन पाण्डेय तथा पुष्पा दीक्षित इत्यादि भी अच्छे गज़लकार हैं।

संदर्भ ग्रंथ सूची

मंजुनाथवाग्वैजयन्ती, पृष्ठ संख्या 80
अभिराजयशोभूषणम्, 5/60-61
अभिराजयशोभूषणम्, प्रकीर्णतत्त्वोन्मेष- 80
अभिराजयशोभूषणम्, 4/85
दृक्- 21, पृष्ठ संख्या 108 *आधुनिक संस्कृत साहित्य तथ्य और काव्य*
पिपासा, पृष्ठ संख्या 48
मत्तवारणी

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,18-20**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 अप्रैल 2014

महाकवि कालिदास के काव्यों की शैली

रमेश चन्द*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *महाकवि कालिदास के काव्यों की शैली* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *रमेश चन्द* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

विलासिनीलासमनोभिरामा,/ रामार्पितश्री: श्रितसौकुमार्या। सालंकृतिर्वाग्वनिता विभाति/ श्रीकालिदासस्य कलाकलापै:।। संस्कृत साहित्य का इतिहास लिखने वाले कपिल देव द्विवेदी "आचार्य" कहते हैं कि- कविता-कामिनी-कान्त कालिदास न केवल संस्कृत वाङ्मय के, अपितु विश्व-वाङ्मय के मुकुटालंकार हैं। उनकी सूक्ष्म दृष्टि बाह्य-जगत् और अन्तर्जगत् की तात्विक विद्याओं का साक्षात्कार करती हुई मनोरम पदावली में उनको अनुस्यूत कराती है। उनकी कलात्मक तूलिका नीरस में सरसता, कर्कश में कोमलता, कठोर में सुकुमारता, सामान्य में विलक्षणता, दुर्बोध में सुबोधता, काव्य में सर्वात्मकता और प्रसाद में माधुर्य का संचार करती है। उनकी कलात्मक रूचि की छाप पग-पग पर दृष्टिगोचर होती है। भाषा पर उनका असाधारण अधिकार काव्य को ध्वन्यात्मक बना देता है।[1]

उनकी शैली में भाषा-सौष्ठव, मनोरम भावाभिव्यक्ति, अंलकारों का सहज-विन्यास, अन्त: और बाह्य प्रकृति का चारु चित्रण, रसों का सुन्दर परिपाक, जीवन-दर्शन की रूचिर स्थापना, विविध-विद्या-निधानता और मनोभावों की मार्मिक अनुभूति मनोज्ञ मणि-कांचन-संयोग उपस्थित करती है। प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति उनके काव्य-गौरव को अधिक समुन्नत करती है। इनकी शैली में कहीं उपमाओं का लालित्य है, तो कहीं अर्थान्तरन्यास का अर्थ-गाम्भीर्य; कहीं उत्प्रेक्षाओं की ऊँची उड़ान है तो कहीं प्रांजल पदावली का सौकुमार्य; कहीं प्रसाद है तो कहीं माधुर्य; कहीं कला प्रधान है तो कहीं कल्पना।[2]

महाकवि कालिदास की भाषा की प्रमुख विशेषता यह है कि उसकी भाषा रसानुकूल होती है। प्रकरण प्रसंग, पात्र और वर्ण्य-विषय के अनुरुप शब्दावली का संचयन मिलता है। कहीं-कहीं पर शब्द-ध्वनि भाव-ध्वनि की अभिव्यक्ति करती है। इस प्रकार के पद-माधुर्य के कारण उनके काव्यों में संगीतात्मकता और लयात्मकता का दर्शन होता है।[3]

एक वीररस का उदाहरण प्रस्तुत है। इसमें कवि ने किस चातुरी के साथ अनुकूल पदावली के द्वारा युद्ध-चित्र चित्रित किया है। *पत्ति: पदातिं रथिनं रथेश-/ स्तुरङ्गसादी तुरगाधिरुढम्। यन्ता गजस्याभ्यपतद्गजस्थं/ तुल्यप्रतिद्वन्द्वि बभूव*

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी एवं संस्कृत, सर्वोदय किसान इण्टर कॉलेज [पौढ़ीराम] गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

युद्धम्।।[4] अर्थात् उस युद्ध में सम-बलशालियों से समान शक्तिशालियों का संग्राम हुआ। पैदल से पैदल, रथी से रथी, अश्वारोही और गजारुढ़ की भिड़न्त हुई।

कालिदास की रचनाओं में रसों का बात आती है तो शृंगार रस का तो कहना ही क्या है कवि की रचनाओं में शृंगार का भी भाषा-मूलक सौन्दर्य देखिये। मधुयामिनी का रसास्वाद करते हुये दम्पती शिव-पार्वती को कैलास पर्वत पर शीतल, मन्द, सुगन्ध समीर क्या ही उनके भाव-विलास को समीरित कर रहा था ? *स्वर्वाहिनीवारिविहारचारी/ रतान्तनारीश्रमशान्तिकारी। तौ पारिजातप्रसवप्रसंगो/ मरुत् सिषेवे गिरिजागिरीशौ।।*[5]

कालिदास की भाषा वशवर्तिनी के तुल्य उनके भावों का अनुगमन करती है। अनुप्रास, यमक आदि अनायास आते रहते हैं, जैसे- *ततो मृगेन्द्रस्य मृगेन्द्रगामी/ वधाय वध्यस्य शरं शरण्यः। जाताभिषङ्गो नृपतिर्निषङ्गा/ दुद्धर्तुमैच्छत् प्रसभोद्धतारिः।।*[6] *एवं सुवदनावदनासवसंभृत-/ स्तदनुवादिगुणः कुसुमोद्गमः। मधुकरैरकरोन्मधुलोलुपै-/ र्बकुलमाकुलमायत-पङ्क्तिभिः।।*[7]

महाकवि कालिदास ललित भावों के कवि हैं। उनके काव्यों में कल्पना की ऊँची उड़ान, मनोभावों की मार्मिक अभिव्यक्ति और भाव-सौन्दर्य पग-पग परिलक्षित होता है।

कन्या-सुलभ शालीनता और संकोच का क्या ही सुंदर वर्णन पार्वती के वर-चयन के प्रसंग में मिलता है। *एवंवादिनि देवषौ पाश्वें पितुरधोमुखी। लीलाकमलपत्राणि गणयामास पार्वती।।*[8]

दम्पत्ति के सुन्दर सम्बन्धों एवं समन्वयात्मक सम्पर्क की अभिव्यक्ति अज-विलाप में परिलक्षित होती है। अज के लिये इन्दुमती न केवल गृहिणी थी, अपितु मित्र, सचिव और ललितकलाविद् शिष्या थी। उसका वियोग अज का सर्वस्वहरण है। ऐसा दाम्पत्य-प्रेम दुर्लभ है। *गृहिणी सचिवः सखी मिथः/ प्रियशिष्या ललिते कलाविधौ। करुणा-विमुखेन मृत्युना/ हरता त्वां वद किं न मे हृतम्।।*[9]

विप्रलम्भ शृंगार का अत्यन्त प्रभावोत्पादक एवं मनोज्ञ वर्णन राम-परित्यक्ता सीता की भाव-विह्वलता में प्राप्त होता है। दुःखातिभार के कारण संज्ञा-शून्य सीता को दुःख का भार इतना दुःखदायी न हुआ, जितना होश में आने पर प्रबोध। *सा लुप्तसंज्ञा न विवेद दुःखं/ प्रत्यागतासुः समतप्यतान्तः। तस्याः सुमित्रात्मजयत्नलब्धो/ मोहादभूत्कष्टतरः प्रबोध।।*[10]

महाकवि कालिदास केवल एक सुन्दर दीपशिखा की उपमा से दीपशिखा कालिदास हो गये। इन्दुमती-स्वयंवर वर्णन में इन्दुमती की उपमा संचारिणी दीपशिखा से दी गई है। वह जिस राजा को छोड़कर आगे निकल जाती थी, वह उसी प्रकार विवर्ण एवं विषादानुकूल हो जाता था, जैसे संचारिणी दीपशिखा के आगे निकल जाने पर पूर्ववर्ती राज-प्रासाद अन्धकारयुक्त हो जाता है। क्या ही मनोरम उपमा है। *संचारिणी दीपशिखेव रात्रौ/ यं यं व्यतीयाय पतिंवरा सा। नरेन्द्रमार्गाट्ट इव प्रपेदे/ विवर्णभावं स स भूमिपालः।।*[11]

एक और सुन्दर कल्पनामूलक उपमा का उदाहरण है- दिन और रात्रि के मध्य सुशोभित सन्ध्या के तुल्य राजा दिलीप और रानी सुदक्षिणा के मध्य कामधेनु पुत्री नन्दिनी की स्थिति। *पुरस्कृता वर्त्मनि पार्थिवेन/ प्रत्युद्गता पार्थिवधर्मपत्न्या। तदन्तरे सा विरराज धेनु-/ र्दिनक्षपामध्यगतेव सन्ध्या।।*[12]

महाकवि कालिदास की उपमाओं में जो भावाभिव्यक्ति और रस-सौन्दर्य मिलता है, उसके समकक्ष ही अर्थान्तरन्यास की ज्ञान-धारा भी बहती है। कुछ अर्थान्तरन्यास सुभाषित के रूप में अत्यन्त प्रचलित हो गये हैं। "अर्थान्तरस्य विन्यासे कालिदासो विशिष्यते।"[13]

उत्प्रेक्षा, अतिश्योक्ति, रूपक, विरोधाभास, यमक आदि के भी सुंदर उदाहरण मिलते हैं। उत्प्रेक्षा अलंकार की क्या ही भाव-भीनी रचना है! सीता के चरणों से वियुक्त नूपुर मानो सीता-चरण-विरह-व्यथा से मौन है। नूपुर के प्रति राम की यह उक्ति कितनी हृदय-स्पर्शी है- *सैषा स्थली यत्र विचिन्वता त्वां/ भ्रष्टं मया नूपुरमेकमुर्व्याम्। अदृश्यत त्वच्चरणारविन्द-/ विश्लेषदुःखादिव बद्धमौनम्।।*[14]

पार्वती के स्मित के सौन्दर्य की अभिव्यक्ति के लिये कालिदास को असंबद्ध में सम्बन्ध-रूप अतिशयोक्ति का आश्रय लेना पड़ा है। *पुष्पं प्रवालोपहितं यदि स्या-/ न्मुक्ताफलं वा स्फुटविद्रुमस्थम्। ततोऽनुकुर्याद्विशदस्य तस्या-*

/ स्ताभ्रौष्ठपर्यस्तरुच: स्मितस्य।। अर्थात् पार्वती के ताम्रवर्ण ओष्ठों पर स्मित की शुभ्र छटा की समानता तभी हो सकती है, जब किसलय पर श्वेत पुष्प रखा हुआ हो या मूँगे पर मोती रखा हो।[15]

रामावतार-वर्णन के प्रसंग में ब्रह्म के निर्गुण और सगुण रूपों का विरोधाभास के द्वारा सुन्दर निरुपण किया गया है। *अजस्य गृह्णतो जन्म निरीहस्य हतद्विष:। स्वपतो जागरुकस्य याथार्थ्यं वेद कस्तव।।*[16]

इसी प्रकार कुमारसम्भव में "जगद्योनिरयोनिस्त्वं..." और "अकिंचन: सन् प्रभव: स सम्पदां..." विरोधाभास के सुंदर उदाहरण मिलते हैं।

कालिदास के वर्णनों में वैचित्र्य और वैविध्य दोनों हैं। उन्होंने अन्त:प्रकृति और बाह्य प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया है। मनोभावों का विशद वर्णन, प्रकृति का मानवीकरण, प्रकृति के साथ तादात्म्य की अनुभूति, वर्णनों में सजीवता और स्वाभाविकता, भावानुकूल पद-विन्यास, तात्विक वर्णनों के साथ व्यंजना वृत्ति का आश्रयण, कला में कल्पना का संयोग और सरल भाषा में भावों की अभिव्यक्ति आदि गुण कालिदास के वर्णनों की विशेषतायें हैं।[17]

रघुवंश और कुमारसम्भव के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि कालिदास को छोटे छन्द अधिक प्रिय थे। बड़े छन्दों का प्रयोग सर्गान्त में किया गया है। छोटे छन्दों में भी उपजाति और अनुष्टुप् छन्द अतिप्रिय हैं।[18] कालिदास ने रघुवंश के नवम् सर्ग में कई छन्दों का प्रयोग किया है। छोटे एवं सरल छन्दों के प्रयोग से कालिदास को रामायण और महाभारत से प्रभावित एवं उनके समीपवर्ती मानना उचित है।[19]

संदर्भ ग्रंथ सूची

1. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी -संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृष्ठ संख्या 153
2. वही
3. वही, पृष्ठ संख्या 154
4. रघुवंश महाकाव्यम्, 7/ 37
5. कुमारसम्भव, 9-38
6. रघुवंश महाकाव्यम्, 2/ 30
7. रघुवंश महाकाव्यम्, 9/ 30
8. कुमारसम्भव, 6-84
9. रघुवंश महाकाव्यम्, 8/ 67
10. रघुवंश महाकाव्यम्, 14/ 56
11. रघुवंश महाकाव्यम्, 6/ 67
12. रघुवंश महाकाव्यम्, 2/ 20
13. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी -संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृष्ठ संख्या 161
14. रघुवंश महाकाव्यम्, 13/ 23
15. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी -संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृष्ठ संख्या 163
16. रघुवंश महाकाव्यम्, 10/ 24
17. डॉ. कपिलदेव द्विवेदी -संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक इतिहास, पृष्ठ संख्या 164
18. वही, पृष्ठ संख्या 165
19. वही, पृष्ठ संख्या 166

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,25-28**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 20 मार्च 2014

914 / 1000 एक चिन्तन

डॉ. मनीषा आमटे*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *914 / 1000 एक चिन्तन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *मनीषा आमटे* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

अजन्मी लड़की मुजरिम है पितृसत्तात्मक रूढ़ीवादी समाज की सजा है 'देहान्त दण्ड'। मनु ने कहा है 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवता' अर्थात् जहाँ नारियों की पूजा होती है वहाँ देवताओं का निवास होता है। जहाँ कन्या भ्रूण हत्या होती हो, वहाँ किसका निवास होता है ? हमारे समाज को क्या हो गया है ? हम उस समाज में जी रहे है जहाँ गर्भ में पल रहे कन्या भ्रूण को बचाने के लिए कानून बनाने पड़ रहे है व उन्हे सख़्ती से लागू करने पर मजबूर होना पड़ रहा है। लगता है शास्त्रों का पढ़ा-लिखा अकारथ हो गया है। यह प्रमाणित है कि जैविक कारणों से महिलाएँ पुरूषों की तुलना में अधिक जीवट होती हैं, इसलिए इस प्राकृतिक आधार पर दुनिया में महिलाओं की संख्या पुरूषों से अधिक होनी चाहिए किन्तु विश्व में भारत सहित अनेक ऐसे देश है जिनके जनसंख्या अनुपात में महिलाओं की संख्या पुरूषों से अधिक है।[1] डॉ. अमर्त्य सेन (1990) के एक अध्ययन के मुताबिक लिंगानुपात के आधार पर दुनिया में महिलाओं की जो आबादी होनी चाहिए थी, उसमें से 10 करोड़ महिलाएँ कम है।[2] ये दस करोड़ 'गुम महिलाएँ' समाज में उनके साथ होने वाले भेदभाव का शर्मनाक सबूत है।

समाज में पुरूषों एवं महिलाओं के बीच बराबरी को नापने के लिए लिंगानुपात एक महत्वपूर्ण सामाजिक संकेतक है। यह विकास को दर्शाने वाला एक संवेदनशील संकेतक भी है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर लिंग अनुपात प्रति 100 महिलाओं पर पुरूषों की संख्या के रूप में व्यक्त किया जाता है। जबकि भारत में इसे जनसंख्या में प्रति 1000 पुरूषों पर महिलाओं की संख्या के रूप में परिभाषित किया गया है।[3] जब 2011 की जनगणना रिपोर्ट प्रकाशित की गयी तो 2001 की जनगणना की तुलना में 2011 में महिला लिंगानुपात में आशिंक बढ़ोत्तरी देखने को मिली प्रति 1000 पुरूषों पर 940 महिलाएँ, किन्तु दूसरी ओर शिशु लिंगानुपात (0-6) में तीव्र गिरावट दर्ज की गयी प्रति 1000 बालकों पर 914 बालिकाएँ। यह रूझान सारे देश में व्याप्त है। 2011 की जनगणना के अनुसार देश के 12 राज्यों में यह प्रतिशत 914 से भी कम है। राजधानी दिल्ली में 1000 बालकों पर 866 बालिकाएँ है। यह इस बात का द्योतक है कि बालिकाओं के जन्म को परिवार व समाज में पूर्ण स्वीकृति प्राप्त नहीं है जिसके चलते उन्हें जन्म से पूर्व ही मार दिया जाता है।

* अतिथि व्याख्याता, समाजशास्त्र विभाग, राज माता सिंधिया शासकीय कन्या महाविद्यालय छिंदवाड़ा (मध्य प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल) E-mail : sandeep.manisha22@rediffmail.com

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

कन्या भ्रूण हत्या के कारण

कन्या भ्रूण हत्या का सर्वप्रमुख कारण समाज की महिलाओं के प्रति वह सोच है जिसके तहत उसे दोयम दर्जे का नागरिक माना जाता है। सदियों की यह सोच एक संस्कार के रूप में न केवल पुरूष बल्कि स्त्रियों के भी अवचेतन में इस तरह रच-बस गयी है कि उसे भी कन्या जन्म से अपराध बोध की अनुभूति होती है मानो उसके द्वारा कोई अपराध घटित हो गया हो। कन्या भ्रूण हत्या के बाद नारी मन में भी अनचाहे बोझ से मुक्ति का भाव उपजता है। "Born to Die" की पुस्तक "you be the mother" में लिखा है कि अरबपति स्त्रियाँ जो बीसियों लड़कियों का पालन-पोषण कर सकती हैं वे भी मानती है कि वर्तमान समाज में लड़कियों को जन्म देना सामाजिक अपमान का कारण बनता है।[4] वास्तव में कन्या भ्रूण हत्या को भारतीय समाज में एक अघोषित सामाजिक स्वीकृति प्राप्त है। मात्र एक ही संतान की चाह रखने वाले दम्पत्ति पुत्री की तुलना में पुत्र को ही तरजीह देते हैं। उनके लिए पुत्री एक गलत इन्वेस्टमेण्ट है। इसी प्रकार दो संतान की चाह रखने वाले परिवार में प्रथम कन्या जन्मने पर दूसरी संतान पुत्र ही हो यह कामना अत्यंत बलवती होती है। पुत्र प्राप्ति की इस कामना ने ऐसा रूप धारण कर लिया कि कन्या संतान की कामना और जन्म दोनों से ही समाज कतराने लगा और पुत्री का जन्म अभिशाप माना जाने लगा। दहेज जैसे समाजशास्त्रीय तत्व भी कन्या भ्रूण हत्या में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है। इस कुरीति ने कन्या को एक 'आर्थिक बोझ' बना दिया है। यह विश्वास किया जाता था कि शिक्षा के प्रसार और जनसंख्या के शैक्षणिक स्तर में उन्नति के फलस्वरूप दहेज जैसी प्रवृत्तियों पर अंकुश लगेगा, किन्तु इसने और अधिक विकराल रूप धारण कर लिया है। इस कारण भी लोग पुत्रियों की तुलना में पुत्रों को महत्व देते है।

पितृसत्तात्मक, समाज की अनेक परम्पराएँ कन्याओं का 'सामाजिक बोझ' के रूप में रूपण करती है यथा :

1. पितृसत्तात्मक समाज में कन्या वंश परम्परा की वाहक नहीं होती।
2. माता-पिता का तर्पण (अंतिम संस्कार व क्रियाकर्म प्रक्रिया द्वारा मोक्ष की प्राप्ति) पुत्र से ही संभव है।
3. लड़का बुढ़ापे की लाठी होता है।

उक्त परम्पराओं और धारणाओं के कारण भ्रूण अवस्था से लेकर मृत्युपर्यन्त महिलाओं को विभिन्न रूपों में शारीरिक, मानसिक हिंसा का सामना करना पड़ता है।

'सुरक्षा' कन्या भ्रूण हत्या का एक अन्य प्रमुख कारण है। कन्या जन्म के पश्चात् विवाह पर्यन्त उसकी समाज की वासनामयी नजरों और कृत्यों से सुरक्षा एक अतिरिक्त सामाजिक दायित्व है। इस दायित्व में जरा भी चूक आजीवन पारिवारिक अपमान का कारण बनता है। इस दायित्व मुक्ति का एकमात्र मार्ग है- कन्या को परिवार में जन्मने ही न दिया जाये।

उपरोक्त कारणों के परिदृश्य में बीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध तक जन्म के पश्चात् कन्या शिशु की हत्या अफीम चटाकर, माता के स्तनों पर अफीम मलकर, उसकी प्राणवायु अवरूद्ध कर, पीले कनेर के पौधे का रस चटाकर या सिरसफल की लेई बालिका को खिलाकर की जाती थी। भ्रूण परीक्षण पद्धति के अविष्कार और भारत में 1977 में मुम्बई के हरिकिशन दास हास्पिटल में प्रथम भ्रूण परीक्षण के पश्चात् नवीन वैज्ञानिक विधि से माता के गर्भ में ही नारी हत्या का एक अनवरत क्रूर सिलसिला प्रारम्भ हो गया। एमिनियोसेंटेमिस के चलते 1981 से 1991 के बीच 4.5 करोड औरतें एक ही दशक में कम हो गयी।[5] केन्द्रीय सांख्यिकी संगठन की एक रिपोर्ट के अनुसार साल 2001 से 2005 के बीच देश में 6,82,000 कन्या भ्रूण हत्या हुई; अर्थात् इन चार सालों में प्रतिदिन 1800 से 1900 कन्याएँ भ्रूण में ही मार दी गई।[6] ये आँकड़े इस बात के प्रमाण है कि सदियों से भारतीय समाज में निहित गैर बराबरी का दर्जा स्त्री के जन्म के पहले ही शुरू हो जाता है। यह भारतीय समाज की स्त्रियों के प्रति नकारात्मक सोच का प्रमाण है।

शिशु भ्रूण हत्या के परिणाम

अनवरत बालिका भ्रूण हत्या के चलते तीव्र गति से स्त्री-पुरूष अनुपात गिरा है। यदि यही प्रवृत्ति जारी रही तो देश में अति असन्तुलित लिंग अनुपात की समस्या खड़ी हो जाएगी। किसी भी स्वस्थ और संतुलित समाज तथा राष्ट्र की परिकल्पना के

लिए स्त्री-पुरूष का सानुपातिक समन्वय अति आवश्यक है। दोनों के बीच असंतुलन से सामाजिक व्यवस्था के बिगड़ने का खतरा स्वयं ही पैदा हो जाएगा। कन्याओं की संख्या में कमी से भारतीय समाज की आधारभूत संस्था 'विवाह' पर गंभीर संकट उत्पन्न हो जाएगा। विवाह योग्य लड़कियों की संख्या में कमी से सभी विवाह योग्य पुरूषों का विवाह संभव नहीं होगा। इस स्थिति में बहुपति विवाह प्रथा को प्रोत्साहन प्राप्त होगा और लड़कियों के अपहरण व बलात्कार की संख्या में अभूतपूर्व वृद्धि होगी। हरियाणा राज्य के झज्जर में प्रति हजार लड़कों पर मात्र 774 लड़कियाँ है। लड़कियों की कमी से इस क्षेत्र का पूरा सामाजिक तानाबाना अस्त-व्यस्त हो चुका है। यहाँ देश के विभिन्न हिस्सों से गरीब बेसहारा लड़कियों को अपहत कर शादी हेतु लाया जाता है।[7] ऐसी बेमेल शादियां स्वस्थ परिवार व समाज के निर्माण में किस तरह सहायक होगी यह संदिग्ध है। लिंगानुपात में यदि निरंतरता आने वाले दशकों में जारी रही तो सम्पूर्ण भारत वर्ष में झज्जर जैसी स्थिति होते देर नहीं लगेगी। जनसंख्या में अविवाहित पुरूषों की बढ़ती सहभागिता अपराध वृद्धि के रूप में एक बढ़ी समस्या को जन्म देगी। संपूर्ण मानव इतिहास में यह देखा गया है कि समाज में घटित अपराधों के लिए तुलनात्मक रूप से अविवाहित व्यक्ति अधिक उत्तरदायी रहे है। समाजशास्त्री जीन ड्रेज और रीतिका खेरा के द्वारा किए गये एक अध्ययन के अनुसार भारत के उन जिलों में जहाँ जनसंख्या अनुपात में महिलाओं की संख्या अधिक है वहाँ उन जिलों की तुलना में अपराध कम पाए गए जहाँ जनसंख्या में महिलाओं की सहभागिता कम रही है।[8]

भ्रूण हत्या रोकने के उपाय : कन्या भ्रूण हत्या रोकने के लिए सर्वप्रथम समाज की मानसिकता को और व्यवहार को बदलने की आवश्यकता है।

सुझाव

1. स्त्री शिक्षा को बढ़ावा देना होगा क्योंकि आत्मनिर्भर स्त्री सुदृढ़ता से बालिका भ्रूण हत्या का विरोध कर सकती है।
2. बेटे और बेटी के भेदभाव को समाप्त कर दोनों को परिवार में समान महत्व देना होगा।
3. समाज की यह मानसिकता बदलनी होगी कि सिर्फ बेटा ही बुढ़ापे की लाठी हो सकता है, बेटी नहीं।
4. दहेज कुप्रथा को प्राथमिकता के साथ समाज से समाप्त करना होगा।
5. बालिका भ्रूण हत्या करने वाले परिवारों का सामाजिक बहिष्कार किया जाना चाहिए। इसके लिए धर्माचार्यों को आगे आना होगा। जैसे अफालतख्त के जत्थेदार जोगिन्दर पाल सिंह वेदान्ती ने निर्देश जारी किया कि जो सिख भ्रूण हत्या का दोषी पाया जायेगा, उसका सामाजिक बहिष्कार किया जाएगा।
6. कन्या भ्रूण हत्या हेतु कठोर कानून मौजूद हैं। इनका पूर्ण ईमानदारी से कठोरतापूर्वक पालन किया जाना चाहिए।
7. म.प्र. सरकार की लाडली लक्ष्मी योजना जैसी योजनाओं की संपूर्ण भारतवर्ष में लागू की जानी चाहिए।
8. ऐसी योजनायें लागू करनी चाहिए जिससे कन्या जन्म को प्रोत्साहन मिले।

आज सख्त कानून एवं व्यापक जन अभियान की आवश्यकता है। जनजागरूकता से हमें समाज में सकारात्मक सोच लानी होगी, सार्थक व जुझारू प्रयास करने होंगे ताकि अजन्मी कन्याओं की हत्या को रोका जा सके और समानुपातिक समन्वय में एक स्वस्थ संतुलित समाज का निर्माण किया जा सके।

संदर्भ -

[1] सिन्हा मुकेश कुमार -''मुजरिम कौन'' मध्यप्रदेश वॉलन्ट्री ऐसोसिएशन द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ संख्या 1

[2] SEN, AMARTYA; *"More than 100 Million women are missing"*, The Newyork Review of Books 37.20 (1990)

[3] सिन्हा मुकेश कुमार -''मुजरिम कौन'' मध्यप्रदेश वॉलन्ट्री ऐसोसिएशन द्वारा प्रकाशित, पृष्ठ संख्या 1

[4] शर्मा, श्रीनाथ -''वैश्वीकरण में स्त्रियों का स्थान'', डॉ. श्रीनाथ शर्मा द्वारा संपादित पुस्तक, सामाजिक विकल्प, म.प्र. समाजशास्त्रीय परिषद् द्वारा प्रकाशित, 2011-12, पृष्ठ संख्या 34

[5]*यथा,* पृष्ठ संख्या 39

[6]कांतेड, क्रांतिसिंह -*''लुप्त होती बेटियां'',* रिसर्च जनरल ऑफ आर्ट्स, मैनेजमेन्ट एण्ड सोशल साइंस, गायत्री पब्लिकेशन, रीवा, पृष्ठ संख्या 203

[7]खरबार, बी.डी. -*''बदलता शिशु अनुपात एक चिन्तन'',* रिसर्च जनरल ऑफ सोशल एण्ड लाइफ साइंस, गायत्री पब्लिकेशन, रीवा, पृष्ठ संख्या 183

[8]RAGU, R; *"Implications of skewed sex ratio in India:,* The Hindu, May 6, 2013

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,29-32**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 07 अप्रैल 2014

महिलाओं के मानव अधिकारों के संरक्षण में गैर सरकारी संगठनों का योगदान

डॉ. श्रीमती प्रतिभा श्रीवास्तव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *महिलाओं के मानव अधिकारों के संरक्षण में गैर सरकारी संगठनों का योगदान* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *श्रीमती प्रतिभा श्रीवास्तव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

1. प्रस्तावना

मानव सृष्टि की धारणा चिरकाल से परम्परागत रूप में विद्यमान है। ये अधिकार हमारी संस्कृति में स्थापित मूल्यों के ही प्रतिबिंब है। मानव अधिकार की धारणा को मजबूत करते हुये आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व जैन धर्म के अंतिम तीर्थकार भगवान महावीर ने ''जियो और जिने दो'' का नारा दिया जिसका तात्पर्य यही है कि प्रत्येक मानव को जिसने इस पृथ्वी पर जन्म लिया है उसे जीने का जन्मजात अधिकार है तथा जो भी मानव उसके जीवन को नष्ट करता है, वह उसके मानव अधिकार का सीधे रूप से हनन करता है।

मानव अधिकार से तात्पर्य उन अधिकारो से है जो मानव जाति के विकास तथा मानवीय गरिमा से सम्बद्ध है। इनमें मुख्यतः जीवन जीने का अधिकार आत्मसम्मान का अधिकार, शिक्षा, स्वतंत्रता का अधिकार तथा शोषण के विरूद्ध अधिकार सम्मिलित है।

मानव अधिकार की धारणा का जब से विकास हुआ तभी से उनके हनन की प्रक्रिया भी शुरू हो गई। इसको देखते हुए विश्व में मानवाधिकार के संरक्षण हेतु 10 दिसम्बर, 1948 को संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा मानव अधिकारों का घोषणा पत्र स्वीकृत किया गया जो मानव अधिकार के संरक्षण का अमूल्य दस्तावेज है। इसी संदर्भ मे भारत में भी 1993 में मानवाधिकार आयोग का गठन विशेष रूप से किया गया।

मानव अधिकार के संरक्षण का प्रश्न उठने पर सहज ही हमारा ध्यान समाज के सर्वाधिक शोषित तथा प्रताड़ित वर्ग अर्थात् महिला वर्ग के अधिकारो के संरक्षण पर जाता है। यह एक सर्वमान्य सत्य है कि समाज की आधि शक्ति तथा

* सहा. प्राध्यापक, समाजशास्त्र विभाग, शा. महाविद्यालय [जुन्नारदेव] छिंदवाड़ा (मध्य प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

सामाजिक विकास का मूल आधार होते हुये भी महिलाओं की स्थिति हमेशा समाज मे दोयम दर्ज की रही है। उन्होंने अपने मूल अधिकारों की प्राप्ति के लिए सतत् संघर्ष करना पड़ा है।

महिलाओं के प्रति होने वाले अपराधों की रोकथाम करने तथा पीड़ित महिलाओं को न्याय दिलाने के लिये भारत सरकार द्वारा विशेष रूप से ''राष्ट्रीय महिला आयोग'' का गठन किया गया। किंतु इनके द्वारा किये जाने वाले प्रयास वृहद पैमाने पर समाज में चल रही अनैतिक गतिविधियों की रोकथाम कर महिलाओ को पूर्व सुरक्षा प्रदान करने मे अपर्याप्त सिद्ध हुए हैं। भारत मे महिला मानवाधिकार के संरक्षण हेतु गैर सरकारी संगठन एक बड़ी ताकत बन कर उभरे हैं। भारतीय गैर सरकारी संगठन वे संस्थान हैं, जो विभिन्न भारतीय कानूनों के अंतर्गत गठित किये गये हैं तथा जिन्हें स्वतंत्र अस्तित्व तथा कानूनों एवं वैधानिक मान्यता प्राप्त है। इसी आधार पर ये महिला मानवाधिकारों के संरक्षण मे जुटे हुये हैं।

2. अध्ययन क्षेत्र

महिला मानवाधिकारों के संरक्षण मे अगर अध्ययन क्षेत्र की दृष्टि से देखा जाये तो ग्रामीण एवं नगरीय क्षेत्र के अंतर्गत ग्रामीण महिलाओं के मानवाधिकारों का हनन ज्यादा होता है क्योंकि उनमें शिक्षा की कमी के कारण अपने अधिकार के प्रति जागरूकता कम पायी जाती है एवं ग्रामीण क्षेत्र मे सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों का भी अभाव पाया जाता है। जो महिलाओं के अधिकारों की पूर्ण सुरक्षा कर सके।

नगरीय क्षेत्र में शिक्षा के प्रचार प्रसार एवं बाहरी क्षेत्र में काम करने के कारण ज्यादातर महिलाएँ अपने मूल अधिकारों के प्रति सजग होती है। जहाँ भी उनके अधिकारों का हनन होता है; वे खुलकर इसका विरोध करती है। विशेषकर नगरीय क्षेत्रों मे नौकरी या व्यवसाय करने वाली कामकाजी महिलाओं को अपने अधिकारों का ज्ञान होता है तथा इनके अधिकारों का हनन होने पर सरकारी एवं गैर सरकारी संगठन द्वारा भी आवाज उठाई जाती है। नगरों में अनेक सामाजिक एवं राजनैतिक संस्थान होती है जहाँ महिलाओं संबंधी समस्याओं का सामाधान भी किया जाता है।

3. आंकड़ो का स्रोत

महिला मानवाधिकारों के संरक्षण के संबंध में जो तथ्य या जानकारी प्राप्त की गई है। उसमें प्राथमिक एवं द्वितीयक दोनों प्रकार के तथ्यों का समावेश किया गया है। प्राथमिक तथ्यों के रूप में परिवार, साथी समूह एवं पड़ोस की महिलाओं से प्रत्यक्ष रूप से जानकारी प्राप्त की गई है तथा द्वितीयक तथ्यों में पत्रिकायें, समाचार पत्र, टेलीविजन आदि के द्वारा महिला अधिकारों के हनन के संबंध में जानकारी प्राप्त हुई। समाचार पत्रों में आये दिन दहेज के लिए प्रताड़ित करना, शारीरिक शोषण करना महिलाओं को जिंदा जलाना आदि खबरें प्रमुख रूप से प्रकाशित की जाती हैं।

टी.वी. में भी महिलाओं को शोषित करने वाली अनेक घटनाएं एवं धारावाहिक निरंतर दिखाये जाते हैं।

प्राथमिक एवं द्वैतीयक तथ्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि अनेक कानून बन जाने एवं सरकारी तथा गैर सरकारी संगठनों के प्रयास के बावजूद महिला अधिकारों के हनन मे कोई विशेष कमी नहीं हुई है। आज भी घर, बाहर दोनों ही जगह महिलाओं के अधिकारों की अनदेखी हो रही है। इस संबंध में अनेक राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर संगठन कार्य कर रहे हैं, इनमें प्रमुख संगठन हैं :

1. एमनेस्टी इंटरनेशनल ह्यूमन राइट्स वाच
2. आल इंडिया फेडरेशन
3. इंडियन पीपुल्स ह्यूमन राइट्स कमीशन
4. जनवादी महिला समिति
5. आल इंडिया वूमेन्स कान्फ्रेन्स
6. ह्यूमन राइट वॉच
7. पीपुल्स यूनीयन फार डोमोकेटिक राइट्स

8. सिटिजन फार डेमोक्रेसी

ये सभी संगठनों के द्वारा मानव अधिकारों के संरक्षण का प्रयास किया जा रहा है।

4. अध्ययन का उद्देश्य एवं प्रविधि

प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य महिला मानव अधिकारों के संरक्षण में गैर सरकारी संगठन अपना कितना योगदान दे रहे है; इस बात को जानना है।

मानव समाज के सर्वांगीण विकास हेतु महिला मानवाधिकारों का संरक्षण वर्तमान समय की प्रमुख आवश्यकता है क्योंकि महिला वर्ग के मानवाधिकारों का हनन तथा उत्पीड़न निरंतर जारी है। ऐसी स्थिति मे इनकी रोकथाम के लिये विभिन्न संगठनों के द्वारा प्रयास किया जाना आवश्यक है। इस संगठन में ऑल इंडिया वूमेन कॉन्फ्रेंस के द्वारा महिला मानवाधिकारों के संरक्षण का प्रयास जारी है। जनवादी महिला समिति द्वारा महिलाओं को अपने अधिकारों के प्रति निरंतर जागृत किया जा रहा है। महिला चेतना युवा संस्था द्वारा महिला विकास कार्यक्रमों पर अधिक जोर दिया जा रहा है तथा विभिन्न महिला संगठनों का निर्माण किया जा रहा है। गैर सरकारी संगठन का प्रमुख उद्देश्य महिलाओं के मानवाधिकारों के प्रति जागरूकता लाना तथा उनमें शिक्षा का प्रसार करना और उनकी सामाजिक, आर्थिक स्थिति में सुधार लाना है।

महिला मानवाधिकारों के संबंध में जो अध्ययन किया गया है उसमें साक्षात्कार विधि, निदर्शन विधि को प्रमुख रूप से अपनाया गया है। कुछ ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं तथा कुछ नगरीय क्षेत्र की महिलाओं से साक्षात्कार द्वारा जानकारी प्राप्त की गई जिससे स्पष्ट होता है कि नगरीय क्षेत्रों की अपेक्षा ग्रामीण क्षेत्र की महिलाओं का ज्यादा शोषण होता है।

5. निष्कर्ष

महिला मानवाधिकारों के संरक्षण में गैर सरकारी संगठनों की भूमिका पर जो अध्ययन किया गया है उससे यह निष्कर्ष सामने आया है कि महिला मानवाधिकारों की रक्षा हेतु राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर अनेक गैर सरकारी संगठन कार्यरत है। किन्तु फिर भी महिला मानवाधिकारों का संरक्षण जितना होना चाहिये उतना नहीं हो पा रहा है। इसका प्रमुख कारण यह है कि ये संगठन क्या है और क्या कार्य कर रहे हैं, इसकी महिलाओं को पूर्ण जानकारी नहीं है और इनका प्रमुख प्रभाव विशेषकर नगरीय क्षेत्रों में ही देखने को मिलता है। ग्रामीण क्षेत्रों में गैर सरकारी संगठन उतनी सक्रियता के साथ काम नहीं कर रहे है, जिससे शिक्षा के अभाव में इनके संबंध में ग्रामीण महिलाओं को पूर्ण जानकारी नहीं है।

किन्तु फिर भी महिलाओं की प्राचीन स्थिति को देखा जाये तो वर्तमान समय में उनकी स्थिति में पर्याप्त सुधार हुआ है। इसका श्रेय सरकारी एवं गैर सरकारी संगठनों को है। इनके द्वारा महिलाओं के अधिकारों के संरक्षण में निरंतर प्रयास करना आवश्यक है। आज कामकाजी या श्रमिक वर्ग की महिला अपने अधिकारों को जान चुकी है और इस कारण किसी भी प्रकार का शोषण होने पर आवाज उठाती है और गैर सरकारी संगठनों के सहयोग से अपने समूह बनाकर आत्मनिर्भरता का परिचय दे रही है तथा सामाजिक बुराइयों जैसे - शराबबंदी, कन्याभ्रूण हत्या पर रोक तथा दहेज पर रोक जैसे कार्य में सहयोग कर रही है। इससे स्पष्ट होता है कि महिलाओं के सामाजिक आर्थिक विकास में गैर सरकारी संगठनों द्वारा किये जा रहे प्रयास सराहनीय एवं सफल सिद्ध हुये हैं।

6. सुझाव

महिलाओं के मानवाधिकारों के संरक्षण के लिये गैर सरकारी संगठनों द्वारा जो प्रयास किये जा रहे हैं उनको प्रभावशील बनाने के लिये निम्न सुझाव प्रस्तुत हैं :

1. गैर सरकारी संगठन क्या है ? उसकी जानकारी महिलाओं को दी जाये।
2. कौन-कौन से संगठन महिलाओं के लिये कार्य कर रहे है। उनका प्रचार-प्रसार किया जाये।
3. ग्रामीण क्षेत्र में गैर सरकारी संगठन ज्यादा सक्रिय होना चाहिए।
4. गैर सरकारी संगठनों का पूरा पता एवं उद्देश्य स्पष्ट होना चाहिए।
5. महिलाओं में गैर सरकारी संगठनों के प्रति जन-जागरूकता होना चाहिए।

संदर्भ

विमला गुप्त : लेख, नई दुनिया, भोपाल, 5 जून 1992

गौतम, रमेश प्रसाद एवं पृथ्वीपाल सिंह -*''भारत में मानवाधिकार'',* विश्व विद्यालय प्रकाशन, सागर (म.प्र.)

संपादकीय, नई दुनिया, भोपाल, 17 सितम्बर 1992

जैन, अरिहन्त (1995) -*''मानव अधिकारों की एक सूची'',* राजकिशोर द्वारा संपादित पुस्तक ''मानव अधिकारों का संघर्ष'' से उद्धृत, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

आमटे, डॉ. मनीषा -*''मानव अधिकार एवं महिलाएं'',* भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी : वर्ष- 6, अंक- 5, सितम्बर-अक्टूबर 2012 मनीषा प्रकाशन, वाराणसी (उ.प्र.)

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,39-44**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 अप्रैल 2014

भारत में आर्थिक सुधारों का गरीबी पर प्रभाव

डॉ. सिद्धार्थ पाण्डेय*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *भारत में आर्थिक सुधारों का गरीबी पर प्रभाव* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *सिद्धार्थ पाण्डेय* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

परिचय (Introduction)

भारत में आर्थिक सुधारों के प्रारम्भ हुये लगभग दो दशक होने जा रहे यह अवधि आर्थिक सुधारों के प्रभावों का अध्ययन करने के लिये उपयुक्त है। सिक्के के दो पहलू के तरह आर्थिक सुधारों के भी सकारात्मक एवं नकारात्मक पक्ष प्रकट होने लगे हैं। सकरात्मक पक्ष में सकल घरेलू उत्पाद (GDP) की उच्चवृद्धि दर, विदेशी मुद्रा का एक बढ़ता हुआ भंडार, सेवा क्षेत्र का सरल घरेलू उत्पाद में बढ़ता हुआ योगदान और विदेशी बाजारों में भारतीय वस्तुओं की बढ़ती हुई प्रतिस्पर्धात्मक क्षमता को रखा जा सकता है। वहीं नकरात्मक पक्ष में आय की बढ़ती हुई असमानता गरीबी निवारण में असफलता, बेरोजगारी, कृषि क्षेत्र की उपेक्षा और विदेशों पर बढ़ती हुयी निर्भरता को रखा जा सकता है। आर्थिक विचारकों के लिये उपरोक्त बिन्दु लम्बे समय से चर्चा का विषय रहे हैं। इनमें सबसे अधिक विरोधाभाषी विचार आर्थिक सुधारों के गरीबी पर पड़ने वाले प्रभावों को लेकर रहा है। सरकारी आंकड़ो में आर्थिक सुधारों के काल में निरपेक्ष गरीबी में गिरावट प्रदर्षित किया जा रहा है, परन्तु UNDP एवं कुछ अन्य निजी अध्ययनों से यह प्रकट होता है कि इस अवधि में गरीबी के आकार में कोई कमी नहीं आयी है बल्कि विस्तार हुआ है। इस परिप्रेक्ष्य में गरीबी को मापने के मानदण्डों की उपयुक्तता पर भी प्रश्नचिन्ह लग रहे हैं। एवं सरकारी एजेन्सियों (अभिकरणों) द्वारा एकत्र किये गये आंकड़ो को भी संदेह की दृष्टि से देखा जा रहा है। आर्थिक सुधारों के पूर्व भी यह बात महसूस की जा रही थी कि राष्ट्रीय उत्पादन में केवल तीव्र वृद्धि होने से ही केवल गरीबी का उन्मूलन नहीं हो पायेगा। इसलिये अस्सी के दशक के प्रारम्भ में गरीबी हटाओ का प्रसिद्ध नारा दिया गया और कुछ प्रत्यक्ष कदम इस दिशा में उठाये गये। परन्तु नीतियों को लागू करने में सरकारी मशीनरी की अदक्षता के कारण कार्यक्रम अपने उद्देश्यों में पूरी तरह सफल नहीं हुये। सुधारोत्तर काल में भी यद्यपि सकल घरेलू उत्पाद (GDP) की वृद्धि पर ज्यादा ध्यान दिया जा रहा है। परन्तु उसके साथ-साथ छोटे-मोटे ही सही गरीबी उन्मूलन के

* असिस्टेंट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र विभाग, बी. एन. के. बी. पी. जी. कॉलेज [अकबरपुर] अम्बेडकरनगर (उत्तर प्रदेश) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

कार्यक्रमों को भी चलाया जा रहा है। आर्थिक सुधारों के काल में चूंकि आर्थिक समृद्धि का नेतृत्व सेवा क्षेत्र द्वारा किया जा रहा है और कृषि की उपेक्षा हो रही है जबकि अधिकांश लोग कृषि से ही अपनी आजीविका प्राप्त कर रहे हैं उनका गरीबी के दुष्चक्र में फंसे रहना अवश्यम्भावी है। गरीबी चाहे शहर में हो या ग्रामीण क्षेत्र में उनकी जड़ गांवों में ही पायी जाती है।

साहित्य का पुनरावलोकन (Review of Literature)

भारत में आर्थिक सुधारों के गरीबी पर प्रभाव के सन्दर्भ में अनेक अध्ययन किये गये है जिनमें सबसे पहलें 1995 में एक अध्ययन तेदुंलकर और जैन के द्वारा किया गया था। इस अध्ययन में 1993-94 के NSSO द्वारा संग्रहित उपभोग व्यय के आंकड़े का प्रयोग करते हुये यह निष्कर्ष निकाला कि वास्तविक अर्थों में व्यय में कमी हुयी है, अर्थात गरीबी के स्तर में कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन 1987 से 1994 के बीच नहीं हुआ है। 1997 में इन्हीं आंकड़ों के माध्यम से सेन द्वारा किया गया अध्ययन भी उपरोक्त निष्कर्षो की पुष्टि करता है। इसके पूर्व 1996 में चन्द्रशेखर एवं सेन द्वारा एक अध्ययन किया गया जिसमें 1991-92 में गरीबी का स्तर 35 प्रतिशत अनुमानित किया गया। इस सन्दर्भ में विश्व बैंक के अनुमान भी विभिन्न वर्षो के लिये उपलब्ध है। जिनसे यह पता चलता है कि 1990-91 मे ग्रामीण गरीबी 36.4 प्रतिशत थी जो बढ़कर 1993-94 में 38.7 प्रतिशत हो गयी।

NSSO % के 50 वें राउन्ड से पता चलता है कि 1993-94 में भारत में 36 प्रतिशत लोग गरीब थे। 1999 में एक और अध्ययन दत्त द्वारा किया जिसमें गरीबी को मापने के लिये तीन प्राचलो- Head count Ratio, Poverty gap और Squared poverty Gap का प्रयोग किया गया। इस अध्ययन में ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी के आंकड़े अपरिवर्तित रहें। यद्यपि शहरी क्षेत्रो में आर्थिक सुधारो के पूर्व तेज गिरावट देखी गयी वनस्पति आर्थिक सुधारों के काल में।

तेंदुलकर एवं सुन्दरम ने 2003 में गरीबी का अध्ययन विभिन्न सामाजिक वर्गो के लिये किया। अनुसूचित जाति (SC) एवं अनुसूचित जनजातियों (ST) में गरीबी का प्रसार अधिक देखा गया। इसमें भी अनुसूचित जनजातियां गरीबी से सबसे अधिक प्रभावित हैं। 2003 में ही तेंदुलकर एवं सुन्दरम ने एक अन्य अध्ययन किया जससे स्पष्ट होता है कि सुधारों के पूर्व गरीबी में तेज गिरावट आ रही थी वनस्पति के सुधारोपरान्त काल में।

पन्त एवं पत्रा ने 2001 में NCAER के सर्वेक्षण आंकड़ों का प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला कि 1993-94 में ग्रामीण गरीबी में गिरावट आयी थी। 2004 में एक अन्य अध्ययन सेन द्वारा किया गया कि जिसमें NSSO के आकड़ों का प्रयोग करके यह निष्कर्ष निकाला गया कि आर्थिक सुधार केवल सक्षम वर्गों को केवल लाभान्वित कर रहा है। भल्ला ने 2003 में अध्ययन किया और अन्य अध्ययनों से अलग निष्कर्ष प्राप्त किया। उनके अनुसार 1993-1999 के बीच गरीबी में तीव्र गिरावट आयी और यह 1999-2000 में यह केवल 15 प्रतिशत रह गयी। परन्तु विश्व बैंक के आंकड़ों के अनुसार यह 35 से 40 प्रतिशत तक और भारत सरकार के आंकड़ों के अनुसार यह 26 प्रतिशत तक थी।

अध्ययन का उद्देश्य (Objective of study)

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य है कि भारत में आर्थिक सुधारों का गरीबी पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन है। चूँकि इस विषय पर अनेक अध्ययन हो चुके हैं उनके निष्कर्ष विरोधाभासी हैं। इसलिये यह शोध पत्र उन अध्ययन में उपस्थित विरोधाभासों को स्पष्ट करने का एक प्रयास है। आर्थिक सुधारों की आलोचना चूँकि मुख्य रूप से गरीबी निवारण के उसकी असफलता पर ही ज्यादा केन्द्रित रह रहा है। इसलिये यह जानना आवश्यक है कि क्या वास्तव में आर्थिक सुधारों का कोई सकरात्मक प्रभाव गरीबी उन्मूलन पर नहीं पड़ा है।

शोध प्रविधि और आंकड़ो का सग्रहण (Methodolgoy and collection of Data)

अध्ययय की सुविधा की दृष्टि से प्रस्तुत शोध पत्र को तीन- भागों में बॉटा गया है। पहले भाग में 1990-91 के बाद विभिन्न समष्टि आर्थिक सूचकों का अध्ययन किया गया है। इस भाग में कुछ आर्थिक सूचकांको के प्रतिव्यक्ति व्यय पर पड़ने वाले प्रभावों का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है। आर्थिक सुधारों के पूर्व एवं आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत इनमें होने वाले परिवर्तनों को भी ध्यान में रखा गयाा है। इन सभी समष्टि आर्थिक चरों के बीच सम्बन्धो के अध्ययन के लिए Simple and Multipul Regression का प्रयोग किया गया है। शोध पत्र के दूसरे भाग में उपभोग व्यय, प्रतिव्यक्ति आय एवं मानव विकास सूंचकांको के द्वारा यह जानने का प्रयास किया गया है कि देशवासियों का जीवन स्तर पहले की तरह सुधरा या उसमें गिरावट हुई है। इन सूंचकाको के सम्बन्ध में Time series आंकड़ों के अनुपलब्धता के कारण मात्रात्मक विश्लेषण असम्भव है इसलिये इस अध्ययन में किसी भी सांख्यिकी उपकरण का उपयोग कठिन है। तीसरे और अन्तिम भाग में देश के विभिन्न भौगोलिक क्षेत्रों में सुधारों के प्रभाव का अध्ययन किया गया है। सुधारों के प्रारम्भ में जो असमानतायें विद्यमान थी उनमें कोई परिवर्तन हुआ है या नहीं यह जानने के लिए कुछ असमानता मापकों का प्रयोग किया गया है। विभिन्न राज्यों के राज्य घरेलू उत्पादों में होने वाले परिवर्तनों के साथ-साथ इनको आधारभूत संरचना सूचकांको से सम्बन्धित करने का प्रयास किया गया है। शोध पत्र में अधिकांश रूप में NSSO, NCAER, CSO, द्वारा संग्रहित एवं विभिन्न वर्षो के आर्थिक सर्वेक्षणों में प्रदर्शित द्वितीयक आकड़ों का प्रयोग किया गया है।

आकड़ों का विश्लेषण एवं निहितार्थ (Analysis of Data and Implicaition)

पिछले लगभग दो दशको से भारतीय अर्थव्यस्था एक अभूतपूर्व समृद्धि की प्रक्रिया से गुजर रही है। परन्तु इसके लिये आर्थिक सुधारों को ही पूरी तरह जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है। यदि हम केवल संवृद्धि दरों का अध्ययन करे तो सापेक्षिक रूप से उच्च आर्थिक संवृद्धि की दर 1992-97 तक प्राप्त की गयी जो 6.6 प्रतिशत थी। 1996 के पश्चात् केन्द्र में अनिश्चितता के कारण आर्थिक संवृद्धि में गिरावट देखी जा सकती है जबकि राजनीतिक स्वरूप में परिवर्तन के बावजूद सुधारों की प्रक्रिया में कोई बाधा नहीं पड़ी थी। नवीं योजना (1997-2002) में संवृद्धि की दर केवल 5.35 प्रतिशत रही। आर्थिक सुधारों के अन्तर्गत सबसे अधिक संवृद्धि की दर दसवीं योजना (2002-07) में प्राप्त की गयी जो 7.7 प्रतिशत थी। अनेक उपलब्धियों जैसे दूरसंचार क्षेत्र, बीमा एवं बैंकिग क्षेत्र का निजीकरण, सार्वजनिक उद्यमों में विनिवेश, आधारभूत संरचना पर जोर, विदेशी निवेश को आकर्षित करने एवं कर सुधारों के बावजूद लोगों के जीवन स्तर में सुधार दिखना अभी भी बाकी हे। कृषि एवं ग्रामीण अर्थव्यस्था में कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। वास्तव में कृषि क्षेत्र अभी भी सुधारों से पूरी तरह अछूता है। अन्य विकासशील देशों से अलग भारत में कार्यशील जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग कृषि पर आश्रित है। उसके जीवन स्तर में कोई सुधार परिलक्षित नहीं होता। चूँकि हमारा मुख्य उद्देश्य आर्थिक सुधारों का गरीबी पर प्रभाव जानना है इसलिए हम आर्थिक सुधारों के सफलता या असफलता का अध्ययन सामान्यजन के जीवन स्तर से ही कर सकते हैं। इस सन्दर्भ में सबसे महत्वपूर्ण सूचक प्रतिव्यक्ति आय है हांलाकि यह आय के वितरणात्मक पक्ष पर बहुत ध्यान नहीं देता फिर भी इसकी उपयोगिता अन्य सूंचकाको से अधिक है। सकल धरेलू उत्पाद के सन्दर्भ में भारत की अर्थव्यस्था विश्व की चौथी सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है यदि इसकी गणना क्रयशक्ति समता के आधार पर किया जाए। इसके साथ-साथ भारत की जनसंख्या वृद्धि दर भी 1991-2001 के बीच लगभग 2 प्रतिशत रही है। इस प्रकार प्रति व्यक्ति आय की वृद्धि सुधारोत्तर काल में औसतन 4 प्रतिशत के उपर रही है। परन्तु प्रतिव्यक्ति व्यय में यह वृद्धि गरीबी के स्तर में किसी भी गिरावट को प्रदर्शित नहीं करती। एक अन्य सूचकांक private final consumption expenditure (PACE) के आंकड़े National Accounts statistics द्वारा संग्रहित किये गये हैं। ये आंकड़े बताते हैं कि सुधारों के पहले दशक में इससे 27 प्रतिशत की वृद्धि हुयी और यह बढ़कर 1991 में 6273 रुपये से 2001 में 7960 रुपये हो गया है। उपरोक्त दोनो आंकड़े यह बताते हैं कि सुधारोत्तर काल में प्रति व्यक्ति आय और प्रति व्यक्ति निजी अन्तिम उपभोग व्यय मे वृद्धि हुयी है। परन्तु यहॉ भी वितरण में समानता संदेहास्पद है। गरीबी के स्तर के बारे में तब तक कुछ नहीं कहा जा

सकता जब तक संवृद्धि के लाभ सभी आय वर्गो को समान रुप से न मिल रहे हो। गरीबी मापने के लिए NSSO द्वारा अभी भी Head Count Ratio का प्रयोग किया जाता है। Head Count Ratio गरीबी का अनुपात या गरीबी रेखा के नीचे रहने वाले लोगों के प्रतिशत को बताता है।

भारत में गरीबी का अनुपात

(वर्ष)	गरीबी अनुपात (प्रतिशत में)			गरीबो की संख्या (मिलियन)		
	ग्रामीण	शहरी	कुल	ग्रामीण	शहरी	कुल
1987-88	39.1	38.2	38.9	231.9	75.2	307.1
1993-94	37.3	32.4	36.0	244.0	76.3	320.3
1999-2000	27.1	23.6	26.1	193.2	67.1	260.3
2006-07	21.1	15.1	19.3	170.5	49.6	220.1

स्रोत- दशवीं पंचवर्षीयोजना (Vol-1)

उपरोक्त आंकडे सरकारी अभिकरणों द्वारा एकत्र किये गये हैं इसलिए अभी यह बात स्पष्ट नहीं है कि गरीबी में गिरावट आर्थिक सुधारों के कारण है या नहीं परन्तु यहॉ महत्वपूर्ण है कि गरीबी का अनुपात ग्रामीण और शहरी दोनों क्षेत्रो में गिर रहे हैं। चूंकि आंकड़े संदेह से परे नहीं है इसलिए कुछ अन्य आंकड़ों का अध्ययन इस सन्दर्भ में सहायक हो सकता है पिछले 20 वर्षों में उन लोगों के अनुपात में लगातार गिरावट आयी है जिनके लिए पर्याप्त खाद्य पदार्थ उपलब्ध नहीं है। ऐसा इसलिए नहीं हुआ है कि निर्धन लोगों की आय में वृद्धि हुयी है बल्कि यह कुछ विशेष कार्यक्रमों से सम्भव हुआ है। शहरों में उन लोगों की संख्या जिनको पर्याप्त खाद्य पदार्थ मिल रहा है 1983 में 93.3 प्रतिशत से बढ़कर 2002 में 99.6 प्रतिशत हो गया है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह आंकड़ा 81.8 प्रतिशत और 98.4 प्रतिशत रहा है।

खाद्यान्न उपलब्धता के आधार पर जनसंख्या का प्रतिशत वितरण

NSSO राउण्ड	पर्याप्त खाद्यान्न	अपर्याप्त खाद्यान्न
48th (1992) ग्रामीण	92.3	7.7
शहरी	97.3	2.7
55th (1999-00) ग्रामीण	96.2	3.8
शहरी	98.6	1.4
58th (2002) ग्रामीण	98.4	1.6
शहरी	99.6	.4

स्रोत- **NSSO** रिपोर्ट

उपरोक्त आंकड़े यह प्रदर्शित करते है कि भूखे सोने वाले लोगों का अनुपात लगातार गिरता जा रहा है। इसके अतिरिक्त अनाज पर किया जाने वाला मासिक व्यय एक अन्य सूचक है जो गरीबी की स्थिति को जानने के लिए उपयुक्त है। ग्रामीण क्षेत्रों में यह व्यय 1991 में 133 रूपये था जो बढ़कर 2002 में 172 रूपये हो गया। शहरी क्षेत्रों में यह आंकड़े 202 रूपये और 298 रूपये है। इससे पता चलता है कि आर्थिक सुधारों के काल में खाद्यान्नों पर व्यय वास्तविक रूप में बढ़ा है, जिसको निम्न तालिका द्वारा देखा जा सकता है।

MPCE(स्थिर मूल्यों पर) (रूपये में)

NSSO राण्उड	ग्रामीण	शहरी
47th (1991)	135	202
51th (1995)	132	196
55th (1999-2000)	159	245
58th (2003-2004)	172	298

स्रोत : NSSO रिपोर्ट

यदि हम गरीबी के स्तर को विभिन्न राज्यों के बीच देखना चाहे तो सभी राज्यों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है :

1- ऐसे राज्य जिनमें 10 प्रतिशत से कम लोग गरीबी रेखा के नीचे है जैसे- हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, गोवा, हिमाचल, जम्मू एवं कश्मीर एवं चण्डीगढ़।

2- ऐसे राज्य जिनमें 20 प्रतिशत से कम लोग गरीबी रेखा के नीचे है जैसे- आन्ध्र प्रदेश, गुजरात, केरला, राजस्थान, मिजोरम, लक्षद्वीप, दादरा नगर हवेली।

3- ऐसे राज्य जिनमें 30 प्रतिशत से कम लोग गरीबी रेखा से नीचे है जैसे- कर्नाटक, महाराष्ट्र, तमिलनाडु, पश्चिम बंगाल, पांडिचेरी, अण्डमान निकोबार और मणिपुर।

4- ऐसे राज्य जहॉ 30 प्रशित से ज्यादा लोग गरीबी रेखा से नीचे है जैसे आसाम, बिहार, मध्यम प्रदेश, उड़ीसा, उत्तर प्रदेश, सिक्किम, नागालैण्ड, अरूणांचल प्रदेश, मेघालय और त्रिपुरा।

अब हम इस स्थिति में है कि प्रति व्यक्ति आय और कुछ जीवन स्तर के सूचकांकों में सम्बन्ध स्थापित कर सके। यह जानने के लिए कि आर्थिक सुधारों के पूर्व एवं उपरान्त प्रतिव्यक्ति आय में कैसे वृद्धि हुयी है संवृद्धि की दरों का विश्लेषण आवश्यक है। यहॉ हम प्रतिव्यक्ति आय और प्रति व्यक्ति अन्तिम उपभोग व्यय की प्रवृत्तियों को जानने का प्रयत्न करेंगे। इनको हम निम्न समीकरणों के रूप में रख सकते हैं।

$$PCI_t = a + bt \quad (1)$$

$$PCCE_t = a + bt \quad (2)$$

उपरोक्त दोनों समीकरण प्रति व्यक्ति आय और प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय दरों को बताने में समर्थ है। आर्थिक सुधारों के पूर्व एवं आर्थिक सुधारों के पश्चात् प्रतिव्यक्ति आय में वृद्धि जानने के लिए दो $dumy$ चरों का प्रयोग आवश्यक है ये दो D_t^{P1} और D_t^{P2} ऐसे चर लिए जा सकते है और तब समीकरण का स्वरूप निम्नवत् होगा-

$$PCI_t = a_1 D_t^{P1} + a_2 D_t^{P2} + b_1 t D_t^{P1} + b_2 t D_t^{P2}$$

D_t^{P1} का मूल्य आर्थिक सुधारों के पूर्व एक आर्थिक सुधारों के पश्चात् शून्य रखा गया है और इसके विपरीत मूल्य D_t^{P2} के लिए निर्धारित किया गया है।

आर्थिक सुधारों के मानव जीवन पर पड़ने वाले प्रभावों को समग्र रूप में देखने के लिए प्रतिव्यक्ति आय का गरीबी रेखा के साथ अनुपात देखने के अलावा और भी तरीके है इसमें विशेष रूप से मानव जीवन सूचकांकों को दिया जा सकता है जैसे- साक्षरता दर, शिशु मृत्यु दर, जीवन-प्रत्याशा शिक्षा, स्वास्थ्य और मानव विकास के अन्य आयामों द्वारा किये जाने वाले खर्च। गरीबी निवारण में आधारभूत संरचना की भूमिका भी महत्वपूर्ण है। आर्थिक सुधारों प्रभावों को तब तक पूरी तरह नहीं समझा जा सकता जब तक कि विभिन्न राज्यों और केन्द्रशासित प्रदेशों के बीच असमानता का ध्यान न रखा जाए इसके लिए प्रति व्यक्ति शुद्ध घरेलू उत्पादों को आधार बनाया जा सकता है।

राज्यों में प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय एवं निर्धनता रेखा के नीचे जनसंख्या

राज्य	प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय (रूपये में)		निर्धनता रेखा के नीचे जनसंख्या (प्रतिशत में)
	ग्रामीण	शहरी	
उड़ीसा	325.79	528.49	46.4
बिहार	354.36	435	41.4
छत्तीसगढ़	322.41	566	40.9
झारखण्ड	366.56	451.24	40.3
उत्तर प्रदेश	365.84	483.26	32.8
असम	387.64	378.84	19.7
केरल	430.12	559.39	15
दिल्ली	410.38	612.91	14.7
हरियाणा	414.76	504.49	14

गोवा	362.25	665.90	13.8
मिजोरम	N.A.	N.A.	12.6
हिमाचल प्रदेश	N.A.	N.A.	10
पंजाब	410.38	466.16	8.4
जम्मू-कश्मीर	291.26	553.77	5.4
अखिल भारत	356.30	53.60	27.5

निष्कर्ष (Conclusions)

उपरोक्त अध्ययन में प्रति व्यक्ति आय का काल श्रेणी के आधार पर प्रतीपगमन विश्लेषण यह प्रदर्शित करता है कि सुधारोत्तर काल में आर्थिक सुधारों के पूर्व की उपेक्षा इसमें तेजी से वृद्धि हो रही है। इसके अतिरिक्त प्रति व्यक्ति आय को प्रभावित करने वाली अन्य चरों में भी सुधारोत्तर काल में भी मजबूती आयी है। प्रति व्यक्ति उपभोग व्यय की वृद्धि दर भी सुधारोत्तर काल में सापेक्षिक रूप से अधिक रही है। इसका तात्पर्य यह है कि भारतीय अब अधिक आय अर्जित कर रहे है और उसका व्यय भी कर रहे है। अध्ययन से यह भी पता चलता है कि औसत रूप से गरीबी का अनुपात गिरा है परन्तु आय की असमनाताओं में वृद्धि हुयी है। राज्य स्तर पर भी इसी तरह की प्रवृत्तियां भी देखने को मिल रही है। आर्थिक सुधारों के काल में संवृद्धि की दर ऊँची होने के साथ-साथ इन असमानताओं में वृद्धि हुई है जो राज्य पहले से विकास की दौड़ में आगे थे वे अभी भी आर्थिक सुधारों का अधिक लाभ उठा रहे है जैसे आधारभूत संरचना जैसे सड़क, बिजली आदि की पर्याप्त उपलब्धता के कारण इन राज्यों में समृद्धि की दर बीमारू राज्यों की अपेक्षा अधिक है। इस प्रकार गरीबी का अनुपात भी इन राज्यों में तेजी से गिरा।

सन्दर्भ

मिश्रा, पुरी -भारतीय अर्थव्यवस्था
कुमार, राजीव -आर्थिक व्यवधान
सेन, ज्यां द्रीज -भारत विकास की दिशाएं
रूद्रदत्त एवं सुन्दरम् -भारतीय अर्थव्यवथा
झुनझुवाला, भरत -भारतीय अर्थव्यवस्था
कुरूक्षेत्र, योजना, आर्थिक सर्वेक्षण।
इकोनॉमिक टाइम्स, नवभारत टाइम्स, दैनिक जागरण।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,45-50**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 24 मार्च 2014

महाकाव्य "नामायण" : गुरु घासीदास का सत्य

डॉ. रमेश टण्डन*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *महाकाव्य "नामायण" : गुरु घासीदास का सत्य* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *रमेश टण्डन* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सारांश

18 दिसम्बर का दिनांक किसी परिचय का मोहताज नहीं है। गुरू घासीदास जयन्ती के नाम से हर वर्ष इस दिनांक को शासकीय अवकाश एवं शुष्क दिवस घोषित किया जाता है। इनके नाम से गुरू घासीदास केन्द्रीय विश्वविद्यालय बिलासपुर एक जाना-पहचाना नाम है। गरीब कृषक परिवार में जन्में, अभावों में पले, दूसरों के घर में मजदूरी करके पेट भरने वाले घासीदास ने घने जंगल में जाकर कठिन तपस्या की। सतपुरूष की कृपा व आशीर्वाद से इसने सतनाम रूपी अमृत को प्राप्त किया। 'सत्य ही मानव का आभूषण है' के प्रणेता गुरू घासीदास जी मद्य-पान, मांस-भक्षण, मूर्ति-पूजा, मन्दिर, तीर्थ-यात्रा, बाह्याडम्बर आदि के विरोधी रहे। सतनाम-धर्म के गुरू-संत गुरू बाबा घासीदास जी की कृपा व आशीर्वाद को पंथी-गीत व पंथी-नृत्य के माध्यम से प्राप्त किया जा सकता है। महाकाव्य 'नामायण' के माध्यम से कवि नृसिंह ने 'सत' नाम का अयण किया और गुरू घासीदास के चरित्र, अलौकिक गुण एवं उपदेशों का बखान किया है।

कूट शब्द : 'सत्य ही मानव का आभूषण है'

गुरू का संक्षिप्त परिचय

संत वीरभानदास जी के वंश में संत मेदनीदास जी अपनी पत्नी मायावती के साथ नारनौल (हरियाणा) से छत्तीसगढ़ आये। तब निम्न क्रम में संत गुरू बाबा घासीदास जी; पिता- महंगूदास, माता- अमरौतीन के घर ग्राम- गिरौदपुरी में 18 दिसम्बर सन् 1756 ई0 को अवतरित हुए- 'मेदनीदास- दुकालूदास- सगुनदास- महंगूदास'

महंगूदास की पाँच संतानें हुईं- 1. ननकू, 2. मनकू, 3. घासीदास, 4. गंगा और 5. जोगी।

गुरू घासीदास का विवाह अपने से 05 वर्ष छोटी सफुरा माता से हुआ। इनसे 05 संतानें हुईं- 1. अमरदास, 2. बालकदास, 3. आगरदास, 4. अड़गड़िहा दास, 5. सहोद्रा (सुभद्रा)। आगरदास के वंश में विजयगुरू और इसके पुत्र रूद्रकुमार (विधायक, छ.ग.

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, महात्मा गांधी शासकीय कला एवं विज्ञान महाविद्यालय (खरसिया) रायगढ़ (छ.ग.) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

विधानसभा) हैं। सतनाम की परम पूजारिन सुभा लुहारिन के विशेष आग्रह पर गुरू घासीदास जी, जन्म स्थली गिरौदपुरी को त्याग कर कर्म की भूमि भण्डार पुरी में आकर बसे। यहीं से इन्होंने पैदल सतनाम यात्रा की शुरूआत की। इसे रावटी या सतनाम यात्रा के नाम से जाना जाता है। मुख्य रूप से इन्होंने डोंगरगढ़, खैरागढ़, भवरदा, भोरमदेव, पण्डरिया, पानाबरस, रतनपुर, कोड़ीदलहा, रायगढ़, खरीयार, खल्लारी, डोंगरी, कांकेर, दन्तेवाड़ा, राजनांदगाँव, कवर्धा, मण्डला, बालाघाट, जबलपुर, अमरकंटक जैसे प्रसिद्ध स्थानों पर सतनाम की डंका बजायी।

गुरू घासीदास की बौद्धिक क्रान्ति सन् 1820 ई0 से 1830 ई0 तक अत्यधिक प्रभावशाली रही। बाबा अपने परिवार एवं शिष्यों समेत सत संदेश देते आगे बढ़े। गिरौदपुरी से मड़वा, इसके बाद तेंदुभाठा, पश्चात् बरपाली होते हुए गिधौरी पहुँचे, जहाँ बरघाट आज भी प्रमाणित है, इसे छ.ग. के महान संगम के रूप में तिरोफल्लागंगा के नाम से जाना जाता है। यहाँ इसने महानदी के तट पर मृत बंदर को जीवित किया। तत्पश्चात् शिवरीनारायण, खरौद, भदराधाम (पामगढ़), नवागढ़ होते हुए अमरतालपुरी धाम पहुँचे; यहाँ चरण पादुका का चिन्ह, श्रीफल में प्रमाण स्वरूप विद्यमान है और प्रतिवर्ष चैत्र मास के कृष्ण पक्ष में पंचमी, षष्ठी एवं सप्तमी को भव्य मेला भी यहाँ लगता है। इसके पश्चात् पचरीधाम होते हुए दलहा पहाड़ गये, जहाँ सात दिनों तक रहे; यहाँ प्रतिवर्ष नागपंचमी के दिन सतनाम मेला का आयोजन होता है तथा यहाँ उल्लेखनीय केराचुआँ, सूर्यकुण्ड विद्यमान है।

इनकी जन्म स्थली गिरौदपुरी में प्रति वर्ष फाल्गुन मास के शुक्ल पक्ष में तिथि पंचमी से सप्तमी तक तीन दिवसीय भव्य सतनाम मेला का आयोजन होता है। यहाँ का चरण कुण्ड, अमृत कुण्ड विशेष उल्लेखनीय है। इन्होंने छाता पहाड़ पर तप किया था। छाता पहाड़ में एक छिद्र के राख या धूल को पान कर श्रद्धालु अपने आप को धन्य मानते हैं। छाता पहाड़ एक बहुत बड़ा शिलानुमा पत्थर है जो गुरू घासीदास जी की धुनी के राख हैं और बाद में पत्थर में तब्दील हुए हैं। मेला के समय लाखों श्रद्धालु दर्शनार्थ यहाँ आते हैं। मेला के दौरान प्रदेश के मुख्यमंत्री भी दर्शनार्थ आते हैं। यहाँ बहुत बड़ा भण्डारा लगता है जिसमें कोई भी बिना रूपये के भोजन ग्रहण कर सकता है। सम्पूर्ण मेले में कोई बीड़ी तक का भी नशा नहीं करता। यहाँ करोड़ों रूपये की लागत से एक गगनचुम्बी जय स्तम्भ नवनिर्मित है।

वैसे सतनाम धर्म के जय स्तम्भ का अपना एक आध्यात्मिक महत्त्व है- यह 03 सीढ़ी के ऊपर 21 हाथ के खम्भे के रूप में स्थापित होता है, 21 हाथ होने के पीछे एक रहस्य है- मानव शरीर 84 अंगुल का होता है जिसे 04 (युग) से विभाजित करने से 21 शेष आता है। खम्भे के शीर्ष में 03 हुक लगाकर इसमें 05 हाथ का एक डण्डा घुसाते हैं, 03 हुक करुणा, सत्य और अहिंसा के प्रतीक हैं तो 05 हाथ का डण्डा पंच तत्त्व का प्रतीक है जिससे यह नश्वर शरीर बना है। इस डण्डे पर श्वेत चतुर्भुज ध्वजा, जो सवा गज की होती है, लगाते हैं। यह चतुर्भुज ध्वजा चारों युग और चारों दिशाओं अथवा समता, शांति, प्रेम और त्याग का प्रतीक है।

बाबा जी के जन्म दिन को शासकीय अवकाश (18 दिसम्बर-गुरू घासीदास जयन्ती) के रूप में घोषणा, तत्कालीन मुख्यमंत्री श्यामाचरण शुक्ल जी ने सन् 1970 में छ.ग. के लिए किया; इसी अवकाश की घोषणा म.प्र. में सन् 1972 में मुख्यमंत्री अर्जुनसिंह के द्वारा की गई। इनके नाम से गुरू घासीदास विश्वविद्यालय की स्थापना सन् 1983 में बिलासपुर में हुई, अब यह विश्वविद्यालय केन्द्रीय विश्वविद्यालय है तथा इनके नाम से डाक टिकट भी जारी हुआ, 1987 में।

गुरू नानक, कबीर साहेब, गौतम बुद्ध, महावीर स्वामी, ज्योतिबा फूले की राह के संत शिरोमणि गुरू घासीदास जी सत्य और मानवता के पर्याय थे। इन्होंने कहा- ''सत्य ही मानव का आभूषण है।'' और उपदेश दिये- जानो, छानो तब मानो। इनके महत्त्वपूर्ण नारें हैं- नवा जागरण, नवा बिहान और नया सबेरा। हम इनके प्रति श्रद्धा और पूज्य का भाव, पंथी गीत तथा पंथी नृत्य के द्वारा प्रकट करते हैं। पंथी नृत्य के प्रणेता देवदास बंजारे एवं गुरू घासीदास जयंती (1938 में प्रारम्भ) के सूत्रधार नकुलदेव ढीढ़ी हैं।

जिस प्रकार मर्यादा पुरुषोत्तम श्री रामचन्द्र जी की कथा का वर्णन महर्षि बाल्मीकि ने रामायण के रूप में किया; उसी प्रकार पाखण्ड, बाह्याडम्बर व मूर्ति पूजा के विरोधी, सत्य के पर्याय गुरू घासीदास जी के नाम का वर्णन खेमराज मनोहरदास नृसिंह ने नामायण के रूप में किया है। महाकाव्य ''नामायण'' के अनुशीलन उपरान्त गुरू घासीदास जी से जुड़े विचित्र पहलुओं को प्रकट करने एवं उनके उपदेशों को लोकहित में सर्व सुलभ करने का एक छोटा-सा प्रयास मैंने यहाँ पर किया है।

ज्ञान

घासीदास का मन घर में बिल्कुल नहीं लगता था। ये हमेशा ज्ञान की बातें बताते थे, जिससे इसके भाई इसे पागल समझते थे- ''तुम जाहु गृह मैं नहीं जाऊँ। मैं सत नाम भजन मन लाऊँ।।/ ननकू मुनकू सुनी अस बानी। रोकी लियो घसिया गहि पानी।।/ घसिया कहे ज्ञान के बानी। सुनत सबहि पागल भय जानी।।/ बर बस बांधी घरे लेई आवा। काम मिला नहिं काह कमावा।।/ घर में घसिया मन नहीं भावै। हरदम सबको ज्ञान बतावै।।/ कोई बैहा पगला कोई जानी। कोई जीव समुझै घसिया ज्ञानी।।/ घसिया कहै रहौं घर नाही। भटके जीवहि राह बताही।।/ गृह कारज मह मन नहीं लागा। खानपान कर सुधि सब त्यागा।।''(पृष्ठ 205)

सत्यनाम

बाद में ये छाता पहाड़ में छः माह तक कठिन तपस्या किये। वहाँ सतपुरुष ने दर्शन देकर सतनाम की शक्ति प्रदान किये- ''कठिन तपस्या कीन्हेऊ शठ मासा। दिव्य शक्ति पायेउ घासीदासा।।/ शक्ति पाय वापस गृह आवा। सत संदेश लोगन को सुनावा।।/ सतनाम में जो गुण होई। ताको काटि सकै नहि कोई।।/ बिना साधे न मिलै सतनामा। देखि भुलायो सुन्दर चामा।।''(पृष्ठ 602)

घोर जंगल में तप करते समय एक दिन सतपुरुष, रूप बदलकर (सिंह के रूप में) परीक्षा लेने के उद्देश्य से, डराने या भक्षण करने घासीदास के सम्मुख आये। परन्तु ये विचलित नहीं हुए, उल्टे सिंह को जादूगर की संज्ञा दिए। परीक्षा में सफल होने के बाद सतपुरुष ने घासीदास को अपने दिव्य रूप का दर्शन कराया और कहा कि इस माया रूपी संसार में अपने रूप को गुप्त रखा जाता है- ''धूनी पार करी धावत भयेऊ। सिंह गहन वन भीतर गयेऊ।।/ घासीदास तब सन्मुख आवा। अर्पन तन कहि शीष नवावा।।/ कई दिन ते तुम खायो नाहीं। भक्षण तन करो भूख बुझाही।।/ किन्हा सिंह तब गर्जन भारी। मानहु अबहीं खाई बिदारी।।/ घासीदास कहा देर ना कीजै। देहीं अपावन पावन कीजै।।/ सुनत सिंह बोले अस बाता। मानुष कर बोली सख्याता।।/ घासीदास मैं लीन्ह परीक्षा। अटल सत्य तप फल अनीक्षा।।/ अब मानों मम बचन प्रमाणा। भा तप सिद्ध मांगु वरदाना।।/ अस कही प्रगटेऊ दीव्य स्वरूपा। नख शिख परम प्रकाश अनूपा।।/ चार भुजा चारू वन माला। मुख द्युति दमकत नैन विशाला।।''(पृष्ठ 266)

''मैं समझा था सतगुरू होई। तुम तो हौ जादुगर कोई।।/ भ्रम हुवा तुमको मैं जाना। मैं नहीं साधत प्रेत मसाना।।/ जाओ कहीं मरघट पर देखो। साधत भूत मसान अनेको।।/ ताहि जाय सिद्धी वर दीजै। पूर्ण मनोरथ तिनकर कीजै।।/ सुनी सतपुरूष कहा मृदु बानी। घासीदास तुम हौ बड़े ज्ञानी।।/ घासीदास कर जोरिके, चरण नवायो माथ। यही रूप किमि धारत, कहो भेद की बात।।/ पुरूष कहा यह माया देशा। पकड़ रखा है सबकर केशा।।/ जब आऊं माया कर देशा। तब मैं गुप्त राखौं निज भेषा।।''(पृष्ठ 267)

घासीदास से, दुष्टों द्वारा दिए गए कष्ट अब सहा न गया। तब सतपुरुष ने उन्हें सत्यनाम में अमृत दिया- ''सुनेऊ सहेंऊ बहुत अपमाना। अब न सम्भालि सकौं यह बाना।।/ सुनि सत्य पुरूष कहा सुचि बैना। घासीदास मन मानो ना मैना।।/ सत्यनाम में अमृत बासा। बचन सत्य करो विश्वासा।।''(पृष्ठ 270-271)

सत्यनाम रूपी अमृत का ध्यान करके गुरु घासीदास ने अपनी मृत पत्नी सफुरा को जिंदा किया- ''देखि लोग सकल धधियाहीं। पहुँचे जाई मरघट के माहीं।।/ ठाढ़ भये मठ के पैताने। नैन मुंदि के ध्यान लगाने।।/ कर में लिये कमण्डल पानी। सत्य अटल स्वास ठहरानी।।/ ढारि दिये मठ पर जल सोई। फाटेउ धरती फांक दुई होई।।/ तेहिते प्रगटेउ सफुरा की लाशा। चकित लोग सब देखि तमाशा।।/ चुल्लु भर बहोरि जल लीन्हा। अमिय नाम तामें पढ़ि दीन्हा।।/ सत्य नाम सुमिरन गुरु कीन्हा। सफुरा मुख सोइ अमृत दीन्हा।।/ हलचल भये अंग सब डोला। सत्यनाम सफुरा मुख बोला।।''(पृष्ठ 282-283)

विलक्षण स्वभाव

घासीदास गरीब परिवार से थे। इन्हें जीविकोपार्जन के लिए दूसरे के घर में काम-मजदूरी करना पड़ता था। एक बार दूसरे के खेत में हल चलाने गए थे। वहाँ अपने आप बैल हल में चल रहे थे और खेत-जुताई का काम हो रहा था। उस समय घासीदास जी खेत के पास में बैठकर ध्यानमग्न थे। खेत का मालिक जब देखा, आश्चर्य में पड़ गया। वह जान गया कि घासीदास कोई सामान्य

व्यक्ति नहीं है, कोई सिद्ध भक्त है- ''एक दिन वर्षा भई अकरासी। घसिया भोर काम पर जासी।।/ घसिया जब किसान घर आयो। नागर जोतन खेत पठायो।।/ नागर जुवा अधर अटकाये। घसिया खांध भार नहि आये।।''(पृष्ठ 209)

''गयेउ किसान खेत के माही। रेंगत बैल जोतावत जाही।।/ देखि न परा जोतैया नागर। बैठे पार पर ध्यान लगाकर।।/ पार ऊपर घसिया लखि पाई। नैन मुंद के ध्यान लगाई।।/ शरण-शरण के शब्द सुनि, छुटि गया जब ध्यान। नयन खोलि देखे जभि, घसिया अपन किसान।।/ कहा किसान अब मैं पहचाना। घासीदास तुम भक्त सुजाना।।/ तुम पक्का पहुंचे हो साधू। क्षमा करहु मोरे अपराधु।।/ अब तुमको ना करावौं कामा। बैठे भजन करहु सतनामा।।''(पृष्ठ 210)

जहाँ सत्य का परचम लहराने लगता है, वहाँ उसके विरोधी भी पैदा हो जाते हैं। घासीदास के काल में भी इनके प्रति जलने वालों की कमी न थी। उन्होंने भी इन्हें असम्भव कार्य करने के लिए (भांटा के खेत से मिर्च लाने) भेजा। परन्तु जिसके साथ सतनाम है, उसे किस बात की चिंता ? उसने भांटा के खेत से मिर्च लाकर सबको हतप्रभ कर दिया- ''दुष्ट हृदय चुभत जिमि काँटा। भेज दिये बारी जहाँ भांटा।।/ कहा तोरि मिरचा लै आवहू। मिरचा छांड़ और जनी लावहू।।/ घासीदास पहुंचि गये बारी। देखत भा निज नैन निहारी।।/ मिरचा भये लगे फल भूरी। टुकना भर सोई लिन्हो तोरी।।/ गये दुष्ट तहाँ लखन तमाशा। करने घासीदास परिहासा।।/ जब देखा मिरचा के बारी। सबके उर भये अचरज भारी।।/ साधू साधू लोग सब कहही। सुनी सुनी दुष्टन के उर दहही।।''(पृष्ठ 213)

पुनः एक कारनामा ! जिसके साथ सतपुरुष हो, वह कुछ भी कर सकता है। दुष्टों ने कष्ट देने के लिए तुरन्त खाना खाकर काम पर आने को कहा। स्नान करने के बाद घासीदास ने गीले कपड़े सुखने के लिए इंतजार नहीं किया अपितु वह अपने साथ-साथ, आकाश में कपड़े उड़ाते-सुखाते, चलते काम पर आ गए- ''दुष्टन रहो ताहि कर घाता। घासीदास कर देखत बाटा।।/ देखा बहुत दूर से आवत। अधर में इक वस्त्र उड़ावत।।/ घासीदास नोहाय के, पहिरो सूखी लंगोटी। अधर में सुखात चले, गुरू की गिल्ली धोती।।''(पृष्ठ 215)

सतनाम पर अवलम्बित गुरू घासीदास जी बिना आग के भोजन पका लिए। यह आम आदमी के लिए आश्चर्य की बात थी- ''देखा सत्य नाम की माया। वस्त्र शीष उपर करि छाया।।/ सहज चाल घसिया चलि आवत। निचे धरती पग न जलावत।।/ चावल दाल सम्पूट करि राखा। खोला ताहि भोजन अभिलाषा।।/ देखत भये अचरज सब भारी। दाल भात भोजन रहा त्यारी।।''(पृष्ठ 215)

उपदेश

(1) मांस और मदिरा का सेवन न करें, कष्ट (बीमारी) आने पर पूजा-पाठ के ढोंग में न पड़ें- ''जीव घट को मरघट बनावत। यामे मुर्दा आनि गड़ावत।।/ मानव तन पाकर जो धरनी। स्वान सियार पशु के करनी।।/ पी मदिरा अरू भक्षत मासा। देवी देवता व्रत उपवासा।।/ दुखन में जड़ पत्थर पूजे। अंध अवज्ञ ढोंग अरूझे।।''(पृष्ठ 355)

(2) सभी जीव एक समान हैं, कोई छोटे-बड़े नहीं हैं, जाति प्रथा मिटायें- ''सो मानहु मम बचन प्रमाणा। भरम त्यागि सुमिरहु सतनामा।।/ जीव बराबर सब घट जानो। छोटा बड़ा ताको नहीं मानो।।/ जाति पांति कर भरम भगावो। ऊँच-नीच कर भेद मिटाओ।।''(पृष्ठ 446)

(3) मनु ने जाति बनाकर विकास का मार्ग अवरूद्ध किया। मंदिर-मस्जिद और मूर्ति-पूजा व्यर्थ है, पूजा-पाठ एवं दान के बहाने ब्राह्मण-पण्डित लुटेरे का कार्य करते हैं। अतः इन पर विश्वास न करें- ''मानव मानव हम एकहि भाई। पुरुष अंश हम सबमें समाई।।/ एक पिता कर हम संताना। जाति-पांति कहां से आना।।/ इक बिरवा कर फूल सब, एकहिं आंगन माहि। एकहि माली जड़ सींचत, पालत पोषत ताहि।।/ तीरथ धाम जगत बहु छाये। सुन्दर मूरति गढ़ि बैठाये।।/ ठांव ठांव मंह पण्डा पुजेरी। ठगि ठगि लूटैं घेरी बेरी।।/ कांस पीतल के मूर्ति बनाके। थैला जेब भगवान को राखे।।/ बाम्हन सबके गिरहा काटे। बाम्हन के गिरहा कोन काटे।।/ बाम्हन घर बड़ छूत बिमारी। मुक्ति मांगे द्वारी-द्वारी।।/ मनुवाद कर खेल यह, जाति पांति बनाया। मानव-मानव में भेद कर, ऊँच अरु नीच बताय।।''(पृष्ठ 447)

(4) सभी जीवों पर दया का भाव रखें- ''सब घट आत्मा एक सम जानो। पुरूष अंशते भिन्न न मानो।।/ आपन रूप सभी मह जानो। दया भाव सब जीव पर लानो।।''(पृष्ठ 448)

(5) सभी जीव एक समान हैं- ''हड्डी चर्म अरू मांस तनु, लाली लहू लखाय। सब प्राणी मह जीव एक, गुरूजी दीन्ह दर्शाय।।''(पृष्ठ 449)

(6) सभी ज्ञानों में श्रेष्ठ 'सत्य-मार्ग' है- ''चार वेद कंठस्थ हो, अरु दस अष्ट पुरान। सत्य परख पावा नहीं, तो विद्या किस काम।।''(पृष्ठ 463)

(7) हृदय में सत्य और सहिष्णु का भाव रखें, गरीबों की सेवा करें और सत्कर्म करते हुए सुसंगत में जीवन बितायें- ''खान पान करिहौ निरवारी। मन होई है निर्मल जस वारी।।/ अन्न से होवत मनहि निर्माणा। मनहि करावत कर्म विधि नाना।।/ सत्य भाव दया उर धारो। झूठ पाखंड तृष्णा तन जारो।।/ दीन दुखी सेवा मन लाओ। सत संगत मह जीवन बिताओ।।/ सत्य कर्म करहु नित भाई। त्यागि अधर्म कुकृत्य बिहाई।।''(पृष्ठ 464)

(8) जीव-हत्या न करें- ''जीव हिंसा सम पातक कोऊ नाही। मांस भखे सो मानव नाही।।''(पृष्ठ 542)

(9) मेहनत करके अपनी आर्थिक स्थिति में सुधार करें, सकारात्मक सोच रखें, बुरी आदतों को त्यागें, व्यभिचार से दूर रहें, बीड़ी-तम्बाखू का सेवन न करें, जुआ न खेलें; खान-पान, व्यवहार व रीति-रिवाज में सुधार करें- ''मेहनत करि निज दशा सुधारो। निहि काहु सन हाथ पसारौ।।/ अपनी सोच बदल तुम डालो। हीन भावना मन से निकालो।।/ बूरे व्यसन त्यागन करि डारो। मेहनत करहु गरीबी निवारो।।/ मंद मास झनि करहु आहारा। करहु सुकर्म तजहु व्यभिचारा।।/ नशा पान मत करहु कभू, बीड़ी तम्बाखू जान। जुवा खेलत धन ना बचे। सीख धरहु हित जान।।/ खान पान चलन व्यवहारा। रीति रिवाज में करहु सुधारा।।''(पृष्ठ 543)

(10) अंधविश्वास न करें, शिक्षा प्राप्त करें, पुत्र एवं पुत्री को एक समान मानें, महिला को आगे लायें- ''रूढ़ीवाद अरू अंधविश्वासा। ये सब है पाखंडी फांसा।।/ शिक्षा बिना रहे ज्ञान अधूरा। ज्ञान शून्य मानव नहीं पूरा।।/ पुत्र पुत्री को एक सम जानो। दोनों का हक बराबर मानो।।/ जब कन्या शिक्षित होई जाही। निज कर्त्तव्य समझ तेहि आही।।/ यहि विधि सभ्य समाज बनाओ। महिला को आगे मह लाओ।।/ घूंघट काढ़ि बैठी रहे, ताते कछु नहि होय। शिक्षित होय सम्मुख लड़ही, अबला कहही न कोय।।''(पृष्ठ 544)

(11) अन्न रूपी देव की पूजा करें- ''तव तन बने अनमोल रतन के। याको राखहु जतन जतन के।।/ तुम्हरे घट माहि बसत सतनामा। नाहक ढूँढत सकल जहाना।।/ अन्नहि करै देह रखवारी। जासे काया पलै हमारी।।/ निशदिन करहु अन्न की पूजा। जेहि समान देव नहीं दूजा।।/ अन्नही गावै अन्नहि बजावै। अन्न बिना मुख बात न आवै।।/ ज्ञान विवके सोच उपजावे। ज्योति पुरुष का दरश करावे।।''(पृष्ठ 602)

(12) इन्द्रियों को वश में रखें, गुरु-वचन का पालन करें; काम-वासना, क्रोध, घमण्ड और लालच का परित्याग करें; जीवों के लिए क्षमा-भाव रखें; सत्य पर विश्वास करें; आपस में प्रेम-भाव रखें- ''निज बस मह इन्द्रीन को राखो। असत त्यागि सत्य मुख भाखो।। नशापान सकल परिहरहु। गुरु गम वाणी सदा उर धरहु।।/ काम क्रोध मद लोभहिं जारो। हिंसा असत मार्ग मत धारो।।/ जीव हिंसा सपनेहु मत कीजै। सकल जीव जग अभय करीजै।।/ सत पर करहु सदा विश्वासा। भ्रम निरवारि घट करै प्रकाशा।।/ सत छांड़ि नहि असत भजो, भजहु सदा सतनाम।/ प्रेम भाव आपस मह राखो, यही मानव पहिचान।।''(पृष्ठ 603)

(13) सबके हृदय में ईश्वर विराजमान है। इसे बाहर ढूँढने की जरूरत नहीं; मूर्ति-पूजा न करें- ''पाथर पूजत तुम जनम गंवाया। एकहु रति लाभ नहिं पाया।।/ सब घट माहि पुरुष कर वासा। तुम काहे ढूढत वन घासा।।/ तीरथ धाम मह मूरत खासा। ये सब पंडन कर है फांसा।।/ घाट घाट बैठेऊ बटपारा। खुद को कहै मुक्ति दातारा।।/ स्वर्ग नर्क कर भेद कहि, दीन्हेऊ मन भरमाय। पूजा पाठ करि दान लेई, तोहिको ठगि ठगि खाय।।''(पृष्ठ 604)

(14) दिन भर की कमाई के एक-चौथाई भाग का बचत करें; पुनः एक-चौथाई अंश को शिक्षा पर खर्च करें; शेष दो भाग में परिवार चलायें- ''दिन भर में जो करेऊ कमाई। चार भाग ताको कर भाई।।/ एक भाग राखहु निज धामा। विपत काल में अहै कामा।।/ एक भाग मह बाल पढ़ावो। ज्ञान अरु शिक्षा मह खर्चावो।।/ शेष भाग पालहु परिवारा। यहि विधि जीवन करहु निरवारा।।''(पृष्ठ 609)

(15) अंतिम उपदेश- नारी शक्ति स्वरूपा हैं, इनका सम्मान करें- ‘‘नारी नहिं कठपुतली, जो कोई हाथ नचाय। यामें शक्ति अपार है, ताको देवहु परखाय।।’’(पृष्ठ 611)

संदर्भ

नृसिंह, खेमराज मनोहर दास (2008) -संत शिरोमणि गुरु घासीदास नामायण (सतनाम धर्म सद्ग्रंथ) सात खण्डों में, हसौदः रितुराज नृसिंह, पृष्ठ संख्या 205, 209, 210, 213, 215, 266, 267, 270-271, 282-283, 355, 446, 447, 448, 449, 463, 464, 542, 543, 544, 602, 603, 604, 609, 611.

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,51-53**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 03 अप्रैल 2014

वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी : पत्रकारिता के क्षेत्र में

डॉ. आरती बंसल*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *वैश्वीकरण के दौर में हिन्दी : पत्रकारिता के क्षेत्र में* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *आरती बंसल* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

किसी भाव विचार या संकल्पना को व्यक्त करने के लिये भाषा की आवश्यकता होती है। वैसे तो भावों या विचारों को किसी भी भाषा की परिधि में बांधा नहीं जा सकता, परन्तु कोई भी भाव अपनी भाषा में जो प्रभाव छोड़ते हैं वो दूसरी भाषा में नहीं छोड़ सकते। अपनी भाषा से मेरा अभिप्राय हिन्दी भाषा से है। एक समय था जब हिन्दी भाषा बोलने और पढ़ने वालों को हीन दृष्टि से देखा जाता था परन्तु आज स्थिति बदल चुकी है। अपनी वैज्ञानिकता एवं सरलता तथा विशालता के कारण आज हिन्दी विश्व स्तर पर अपनी एक विशेष पहचान बना चुकी है। देश ही नहीं विदेशों में भी आज हिन्दी के प्रति जो रुचि देखी जाती है वह निश्चित रुप से सराहनीय है। इस संदर्भ में यदि यह कहा जाए कि हिन्दी भाषा को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर ख्याति दिलाने तथा विश्व पटल पर स्थापित करने में पत्रकारिता ने अहम् भूमिका निभाई है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी पत्रकारिता

यूं तो स्वतंत्रता से पूर्व भी हिन्दी का कोई आन्दोलन ऐसा नहीं हुआ जिसमें हिन्दी पत्र-पत्रिकाओं की भूमिका न रही हो। परन्तु आजादी के बाद तो संविधान में अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता मौलिक अधिकार बन गई तथा राष्ट्र निर्माण को सफल बनाने के लिये जनमत जगाने का भार पत्रकारों के कन्धों पर आ गया। पूंजी के सहयोग एवं मुद्रण तकनीक में आई क्रान्ति के कारण पूर्ण सज्जायुक्त पत्र-पत्रिकाएं निकलनी शुरु हुई। संपादन में भी उनमें आधुनिकता का प्रादुर्भाव हुआ। विभिन्न विषयों की पत्रिकाओं का प्रकाशन आरम्भ होने से हिन्दी भाषा की अभिव्यक्ति की शक्ति बढी। साहित्य सृजन के क्षेत्र में भी नये-नये अध्याय स्थापित हुये और पत्रकार उस काल की चेतना को प्रतिबिम्बित करने में बहुत हद तक सफल भी रहे। सरकारी पत्र-पत्रिकाओं की बात करें तो हम कह सकते हैं कि चाहे परम्परा कहो या मानसिक गुलामी परन्तु सरकारी काम काज में आजादी

* असिस्टेंट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, सी. एम. के. नेशनल पी. जी. गर्ल्ज़ कॉलेज सिरसा (हरियाणा) भारत। (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

के बाद अंग्रेजी का वर्चस्व बहुत समय तक कायम रहा अतः सरकार की विभागीय पत्रिकाओं में अंग्रेजी का बाहुल्य था। परन्तु आज स्थिति बदल चुकी है। पत्रिकाएं चाहे सरकारी हों या गैर सरकारी, हिन्दी की पत्रिकाओं की संख्या में आजादी के बाद निरन्तर बढ़ोतरी हो रही है। हिन्दी की बहुचर्चित पत्रिकाओं में धर्मयुग, साप्ताहिक हिन्दुस्तान, कादम्बिनी, आजकल, आलोचना, नवनीत, नई कविता, नई धारा, कल्पना, कहानी, सारिका, दस्तावेज, लहर, गृहशोभा, चंपक, नंदन, मनोहर कहानियां, सरिता, दिनमान, कुरुक्षेत्र, पराग, चंदामामा, सुषमा, बाल भारती, ज्ञानभारती, विज्ञान प्रगति, बाल जगत, चमकते सितारे, प्रतियोगिता सम्राट, क्रिकेट सम्राट, नन्हे सम्राट, प्रतियोगिता किरण, प्रतियोगिता दर्पण आदि पत्रिकाओं के नाम मुख्य रुप से गिने जा सकते हैं। सरकारी प्रकाशन की दिशा में खेती, विज्ञान प्रगति, योजना, भारतीय रेल आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। लगभग सभी हिन्दी समाचार पत्र अपनी साप्ताहिक, पाक्षिक या मासिक पत्रिकाएं प्रकाशित करते हैं जिससे उनकी प्रसिद्धि लगातार बढ़ रही है। बाल पत्रिकाएं भी इस दिशा में अपना विशेष योगदान देती हैं। लगभग सभी समाचार पत्रों की बाल पत्रिकाएं जैसे बाल भास्कर, बाल केसरी, बाल भूमि आदि बालकों में हिन्दी के प्रति रुचि पैदा करने में सहयोगी सिद्ध हुई हैं। इसी के साथ साथ विभिन्न समाचार पत्रों के आंचलिक संस्करणों ने हिन्दी पत्रकारिता के प्रसार को बढ़ाने में अभूतपूर्व सफलता प्राप्त की है। नवभारत टाइम्स, दैनिक हिन्दुस्तान, धर्मयुग, दिनमान, दैनिक भास्कर, दैनिक जागरण, पंजाब केसरी, हरिभूमि आदि समाचार पत्रों ने आंचलिक एवं स्थानीय समाचारों के बल पर अपने पाठकों की संख्या में भरपूर वृद्धि की है। इन पत्रों से राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय समाचारों के अतिरिक्त हर अंचल के लोगों को अपने अंचल या क्षेत्र के समाचार प्राप्त हो जाते हैं। अपने शहर, जिले या अपने राज्य के समाचारों, वहां की आर्थिक, सामाजिक, राजनितिक गतिविधियों के प्रति हर व्यक्ति जागरूक रहता है। उसकी इस इच्छा को हिन्दी पत्र ही पूरा कर पाते हैं। इस प्रकार हिन्दी पत्रकारिता को आगे बढ़ने की नई दिशा मिली तथा हिन्दी भाषा जनसाधारण के मन में अपनी खोती जा रही जगह को पुनः प्राप्त करने में सफल हुई।

अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी पत्रकारिता

अपने देश के साथ साथ यदि हम विदेशों की बात करें तो विश्व का शायद ही कोई ऐसा देश होगा जहां से एक भी हिन्दी पत्र या पत्रिका प्रकाशित न होती हो। इंग्लैड विश्व का वह पहला देश है जहां से हिन्दी पत्र हिन्दोस्थान का प्रकाशन हुआ। यह पत्र 1883 ईस्वी में काला कांकर नरेश के संपादन में शुरू हुआ। आज वस्तुस्थिति यह है कि विश्व के प्रायः सभी देशों में भारत से तथा अन्य देशों से प्रकाशित हिन्दी पत्र पत्रिकाएं पढ़ी जाती हैं।

तीर्थों के देश नेपाल की राष्ट्रभाषा नेपाली हिन्दी के काफी निकट है। तथा इसकी लिपि भी देवनागरी जैसी ही है। नेपाल के शहर काठमांडू से हिमालय, हिमवंत, संस्कृत, सही रास्ता, नव नेपाल आदि हिन्दी पत्र पत्रिकाओं के प्रकाशन की जानकारी मिलती है। इसी प्रकार बर्मा में बर्मा समाचार, प्राची कलश, ब्रह्म भूमि आदि पत्र प्रकाशित हुए। इनमें से कुछ तो बंद हो गए परंतु ब्रह्म भूमि जैसे पत्र आज भी बर्मा में हिन्दी पत्रकारिता की रोशनी फैला रहे हैं। जापान में प्रकाशित अंक, सर्वोदय आदि पत्र हिन्दी पत्रकारिता को बढ़ावा दे रहे हैं। रूस से प्रकाशित होने वाले सोवियत रूस, सोवियत नारी, युवक दर्पण, सोवियत दर्पण आदि पत्र उल्लेखनीय हैं। इसके अतिरिक्त मास्को और तासकन्द आकाशवाणी से हिन्दी फिल्मों के गीत तथा अन्य हिन्दी कार्यक्रम प्रसारित किये जाते हैं।

मॉरीशस में हिन्दी पत्रकारिता बीसवीं शताब्दी के प्रारम्भ में शुरू हुई। मॉरीशस मित्र, मॉरीशस इण्डियन टाइम्स, आर्यवीर, जागृति, जमाना, मजदूर, नवजीवन, अनुराग, बालसखा, आदि कितने ही नाम हैं जो मॉरीशस में हिन्दी पत्रकारिता की कमान संभाले हुये हैं। इसी प्रकार शिवरात्रि, रणभेरी, दर्पण आदि पत्रों ने भी मॉरीशस में हिन्दी पत्रकारिता को प्रोत्साहित किया है। हिन्दी पत्रकारिता की इतनी गौरवमयी परम्परा को देखकर निश्चित ही प्रसन्नता का अनुभव होता है।

फिजी की भाषा फिजी व अंग्रेजी है। फिर भी वहां फिजी समाचार, भारत पुत्र, बुद्धि आदि पत्र हिन्दी में प्रकाशित हुये। इनके अतिरिक्त किसान, दीनबन्धु, ज्ञान, तारा, पुस्तकालय, प्रवासिनी आदि पत्रों के नाम लिये जा सकते हैं। ऐसे ही जागृति, आवाज, झंकार, किसान मित्र, सनातन संदेश, राजदूत, शंख आदि हिन्दी के पत्र विश्व की हिन्दी पत्रकारिता को बढ़ाने में अपना पूरा सहयोग प्रदान कर रहे हैं। ऐसे ही सूरीनामा के आर्यदिवाकर, सरस्वती, भारतोदय, धर्मप्रकाश, वैदिक संदेश,

प्रेम संदेश, प्रकाश, विकास आदि पत्र सूरीनाम में हिन्दी प्रकाशन के लिये तकनीकी कठिनाईयों को झेलते हुये भी वहां हिन्दी पत्रकारिता के दीप जला रहे हैं। इसी प्रकार ट्रिनीडाड और टोबैगो में कोहेनूर अखबार, ज्योति, तथा दक्षिण अफ्रीका में इण्डियन ओपिनियन व हिन्दी नामक पत्र इन देशों में हिन्दी पत्रकारिता को बढ़ावा दे रहे हैं।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि हिन्दी विश्व मंच पर छाती जा रही है। यूं तो स्वतंत्रता से पूर्व भी विदेशों में हिन्दी पत्रकारिता का प्रस्फुटन हो चुका था, परन्तु आजादी के बाद तो हिन्दी का प्रचार प्रसार इतना बढ़ा कि आज विश्व की तीसरी भाषा के रूप में हिन्दी विश्वपटल पर स्थापित हो चुकी है। पत्रकारिता के साथ यदि हम संचार के अन्य माध्यमों के योगदान की बात न करें तो यह उचित नहीं होगा, क्योंकि पत्रकारिता के साथ साथ संचार माध्यमों ने भी वैश्विक स्तर पर हिन्दी भाषा को प्रचलित करने में अहम् भूमिका निभाई है।

संदर्भ सूची

अरविन्द कुमार -हिन्दी पत्रकारिता के छह दशक
राजकिशोर -हिन्दी पत्रकारिता की भाषा
आलोक तोमर -एक नई प्रवासी पत्रकारिता का दौर
प्रो0 ऋषभदेव शर्मा -हिन्दी भाषा के विकास में पत्र-पत्रिकाओं का योगदान
श्यामसुन्दर शर्मा -समाचार पत्र : मुद्रण और साज-सज्जा
शिव कुमार दुबे -हिन्दी पत्रकारिता इतिहास एवं स्वरूप

पत्रावली संख्या V-34564, पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,58-70**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 अप्रैल 2014

मालवी की बोलियाँ

डॉ. कला जोशी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मालवी की बोलियाँ* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *कला जोशी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

मालवी हिन्दी की एक प्रमुख बोली है। जो उपभाषा का दर्जा रखती है। भाषा वैज्ञानिकों ने हिन्दी भाषा का वर्गीकरण करते समय मालवी को विशेष महत्व दिया। इस तरह मालवी मध्यकाल के विशाल भू-भाग में बोली जाती है और यहाँ के व्यक्तियों के हृदय से नित्य निःसृत होती रहती है। सर जार्ज गिर्यसन ने यद्यपि मालवी को स्वतंत्र रूप में उपभाषायी अथवा बोली आदि के रूप में उल्लेखित नहीं किया है। वे अंतरंग वर्ग के केन्द्रीय समुदाय में विभाजित भाषाओं के अंतर्गत गुजराती के समान भीली को महत्व देते हैं जबकि भीली से भी अधिक भू-भाग में बोली जाने वाली बोली उनके वर्गीकरण में छूट गयी। फिर भी इसे पश्चिमी हिन्दी में समाहित कर इसके महत्व को स्वीकारते हैं।

सुनीति कुमार चटर्जी ने ग्रियर्सन के समान मालवी को पृथक रूप से उपभाषा अथवा बोली के रूप में चित्रित नहीं किया है लेकिन उन्होंने राजस्थानी, गुजराती क्षेत्र की भाषा के अंतर्गत माना है। भोलानाथ तिवारी ने मालवी को पश्चिमी हिन्दी की राजस्थानी वर्ग की बोली के रूप में स्वीकार किया है। इसी प्रकार डॉ. धीरेन्द्र वर्मा ने चटर्जी के आधार पर राजस्थानी में मालवी को स्थान दिया है।

मालवी के जातिगत वर्गीकरण के अंतर्गत उसकी चार उपबोलियाँ मिलती हैं- सौंधवाड़ी, उमटवाणी, रजवाणी और निमाड़ी।

1. सौंधवाड़ी

सौंधवाड़ी का नामकरण मालवे में रहने वाली सौंधिया जाति के कारण हुआ है। यह जाति जिस क्षेत्र-विशेष में रहती है, उसे सौंधवाड़ कहते हैं। इस प्रकार सौंधिया सौंधवाड़ और सौंधवाड़ी तीनों नाम परस्पराबद्ध हैं।

सौंधवाड़ का प्रारंभ शाजापुर जिले की उत्तरी सीमा से संलग्न पार्वती नदी से होता है। कालापीपल के उत्तर का भाग, आगर, सुसनेर, जीरापुर, महिदपुर और तराने के उत्तर का भाग, चौमेला मंडी तथा गरोठ तहसील में चंबल का पूर्वी-दक्षिणी

* शास. कला एवं वाणिज्य महाविद्यालय इन्दौर (मध्य प्रदेश) भारत। E-mail : prof.kalajoshi@yahoo.com (सदस्य सम्पादक मण्डल)

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित, सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

क्षेत्र सौंधवाड़ के अंतर्गत आता है। इस क्षेत्र में बहनेवाली दो सरिताओं छोटी कालीसिंध और बड़ी कालीसिंध का मध्यवर्ती भाग सौंधवाड़ का हृदयस्थल माना जाता है।

सौंधियों के अतिरिक्त इस क्षेत्र में अन्य कई जातियाँ जैसे- मेर, मीणा, भील, मोघिये आदि के साथ कुछ औषक जातियाँ भी बस गई हैं। ये सब लोग सौंधवाड़ी में ही अपनी भावाभिव्यक्ति करते हैं।

सौंधवाड़ी का क्षेत्र रजवाड़ी के निकट पड़ता है अतः दोनों ने एक दूसरी को प्रभावित किया है, पर यह प्रभाव-साम्य स्थूल है। सौंधवाड़ी की कई विशेषताएँ आदर्श मालवी से मिलती हैं यथा इसके सार्वनामिक रूप (हूँ, हम, तम, तमारा और तू) कारक विभक्तियाँ (हारूँ और वास्ते) तथा बहुवचन के प्रत्यय (होन) ये इसे रजवाड़ी से अलग करती हैं।

सौंधवाड़ी का विशेषताएँ

1. औंकार बहुलता मालवी व उसकी समस्त उपबोलियाँ की प्रमुख विशेषता है। सौंधवाड़ी भी इससे अछूती नहीं है यथा- टापरो, कापड़ो, डांगरो, ख टेगड़ो, हाड़को, झाड़को इत्यादि।
2. मध्य स्वर 'इ' का सौंधवाड़ी में लोप हो जाता है, यथा :

ठिकाना	-	ठकाणू
मिटाना	-	मटाणू
किनका	-	कणका
कठिन	-	कठण
पुलिस	-	पुलस
मन्दिर	-	मंदर

3. आदि स्वर 'इ' कहीं-कहीं 'अ' में बदलता या 'ए' में भी विकसित होता है :

इक्कावन	-	अक्यावन
इकट्ठा	-	एकठा

कहीं-कहीं दीर्घ 'ई' भी 'ए' में बदलता है, यथा :

ईमान	-	एमान

4. सौंधवाड़ी में स - ह में बदल जाता है। रजवाड़ी में भी यह प्रवृत्ति मिलती हैं, यथा :

समझ	-	हमज
सरीखा	-	हरको या हरिको
सड़क	-	हड़क

5. 'ह' कार के लोप की प्रवृत्ति भी सौंधवाड़ी में प्रमुख है। इस दृष्टि से यह मालवी और उसकी अन्य बोलियों के निकट हैं, यथा :

पहले	-	पेलां
कहना	-	केणों
दोपहर	-	दफोर
नेहरूजी	-	नेरूजी

6. मालवी तथा उसकी अन्य उपबोलियों के समान सौंधवाड़ी में भी महाप्राण, अल्पप्राण में उच्चरित होता है, यथा :

धन्धा	-	धन्दो
पधारिये	-	पदारो
समझ	-	हमज
आँख	-	आंक्

7. इसी प्रकार अल्पप्राण, महाप्राण में उच्चरित होता है, यथा :

कील	-	खील
चड़स	-	छड़
चौकसी	-	छोगस
दोपहर	-	दफोर
चूल्हा	-	छूलो या छूल्हो

8. सौंधवाड़ी में उष्म ध्वनि 'स' का विकास प्रायः तालव्य 'श' में हुआ मिलता है, जैसे :

राम राज लई सके (मा.)
राम राज लई शके (सौंध.)

साहब	-	शाब

परन्तु माध्यम 'श' दन्त्य 'स' में भी उच्चरित होता सुनाई देता है, जैसे :

काश्मीर	-	कासमीर

9. अन्य बोली भेदों की तरह सौंधवाड़ी में भी 'ब' श्रुति 'व' में बदल जाती है, जैसे :

बिगाड़	-	वगाड़
बात	-	वात

10. कभी-कभी 'व' का उच्चारण 'ब' भी होता है, यथा :

वो	-	बो

11. इसमें 'भ' उच्चरण प्रायः 'ब' भी होता है, यथा :

वह भी	-	ऊ बी
शोभ	-	होब

12. सौंधवाड़ी में मूर्धन्य 'ळ' का उच्चारण होता है। यह प्रवृत्ति इसे रजवाड़ी से बिल्कुल अलग कर देती है, यथा - माळ, थाळो, खळी, कळपो, कळी आदि।

13. सौंधवाड़ी में एकवचन ओकारान्त संज्ञा -शब्दों के बहुवचन के रूप आदर्श मालवी जैसे ही हैं, जैसे :

एकवचन	-	बहुवचन
लोग	-	लोग होन
करसाण	-	करसाण होण
गाँव वाळा	-	गाँव वाळान

पर इसके बहुवचन के प्रत्यय 'होन' के अतिरिक्त 'होण' तथा '' भी हैं। ये प्रत्यय निमाड़ी के अधिक निकट हैं।

14. एकवचन स्त्रीलिंग शब्दों में यां-आं प्रत्यय जोड़कर बहुवचन बनाया जाता है, यथा :

एकवचन	-	बहुवचन
गाय	-	गांयां
छोरी	-	छोर्‌यां
लुगाई	-	लुगायां
बाई	-	बायाँ

कारक चिन्ह :

सौंधवाड़ी के कारण चिन्ह इस प्रकार हैं :

कर्ता	-	ने
कर्म कारक	-	के-ती

करण कारक	-	ती
सम्प्रदान कारक	-	हारूँ-वास्ते
अपादान कारक	-	ती
संबंध कारक	-	को, के, की, रा, रे, री
अधिकरण कारक	-	में, पे, पर

सौंधवाड़ी में 'ती' परसर्ग के अतिरिक्त शेष सभी कारकों के परसर्ग आदर्श मालवी से मिलते हैं।

सर्वनाम :

सौंधवाड़ी के सर्वनाम इस प्रकार हैं :

	एकवचन	बहुवचन
प्र.पु.	म्हूँ-हूँ	हम
द्वि.पु.	तू-थूं	तम-थी-तमारा
तृ.पु.	ऊ	वी

उत्तम पुरूष सर्वनाम का रूप सौंधवाड़ी में 'हूँ' या 'महूँ' होता है। 'हूँ' आदर्श मालवी का सर्वनाम है और 'म्हूँ' रजवाड़ी सादृश्य रखता है। मध्यम पुरूष एक वचन में- 'तूं-थूं' तथा बहुवचन के 'तम'-'तमारा' रूप भी सौंधवाड़ी को आदर्श मालवी के निकट ले आते हैं।

अन्य पुरूष के दोनों वचनों का प्रयोग आदर्श मालवी और निमाड़ी में भी होता है। 'थूं', 'थारे', 'थारो' रूप सौंधवाड़ी पर रजवाड़ी का प्रभाव प्रकट करते हैं। इसी प्रकार सौंधवाड़ी में प्रथम पुरूष में म्हारे, म्हारो आदि का प्रयोग भी रजवाड़ी का प्रभाव प्रदर्शित करते हैं।

सौंधवाड़ी में निजवाचक सर्वनाम के एकवचन में 'अपण' और बहुवचन में आपणा, अपणा, अपणे आदि रूप प्रयुक्त होते हैं। कभी-कभी 'अपण' बहुवचन बहुवचन में भी प्रयुक्त होता है, जैसे - 'वण पेटीमेंज अपण किरसाण होन के वोट लाखणू।'

निकटवर्ती सर्वनाम के लिए सौंधवाड़ी के लिए सौंधवाड़ी में 'यो' तथा ई (ये) प्रयुक्त होते हैं। इसी प्रकार दूरवर्ती सर्वनाम के एकवचन और बहुवचन के रूप ऊ (वह) और वी (वे) होते हैं। यह प्रवृत्ति मालवी व निमाड़ी दोनों में समान रूप से मिलती हैं।

'जो' तथा 'जणाको' संबंधवाचक सर्वनाम के रूप हैं। उनमें में जो 'जो' निमाड़ी के तथा 'जणाको' रजवाड़ी के सन्निकट हैं। प्रश्नवाचक सर्वनामों के रूप 'कई' तथा 'कोई' रूप प्रयुक्त होते हैं, जैसे - 'वरड़ा को हेनाण म्हारै कई जचोनी।' 'अबे कोई वोट हारूँ आवे.....

ये दोनों रूप मालवी तथा निमाड़ी में भी प्रयुक्त होते हैं। सौंधवाड़ी के परिमाणवाचक तथा गुणवाचक विशेषण रजवाड़ी के अधिक निकट हैं, जैसे- *परिमाणवाचक* - जतरो, वतरो, कतरो, थोड़ो बोत। *गुणवाचक* - असो, वसो, जसो, उजळो, अच्छो, बुरो, लाल आदि।

लाल आदि साकल्यवाचक सर्वनाम के लिए 'सब' तथा 'हगरी' शब्द प्रयुक्त होते हैं। यह दोनों शब्द मालवी की सभी उपबोलियों में मिल जाते हैं 'पण' शब्द विभाजक अव्यय है तथा ने, अने एवं ओर संयोजक। मालवी के सभी विभेदों में ये मिलते हैं। आदरसूचक सर्वनामों के लिए आप, थी, थांई, तम, तमारा का प्रयोग मालवी एवं रजवाड़ी के सदृश ही होता है। मालवी एवं गुराजती की भाँति इसमें भी शब्दान्त में 'ड' प्रत्यय जोड़ने की प्रवृत्ति मिलती है। यहाँ यह 'ड़' हो गया है, जैसे - गामड़ो, बापड़ी, लगाड़े, वताड़, दाँतड़ा, कटाड़ी, चलाड़ी, खवाड़ी इत्यादि।

क्रिया रूप - कहना क्रिया

	एकवचन	बहुवचन
वर्तमान काल		
प्रथम पुरूष	हूँ (म्हूँ) कूं हूं	हम कां हां

मध्य पुरूष	तू (थूं) के हे	तम (थी) को हो
अन्य पुरूष	ऊ के हे - केवे हे	वी के हे - केवे हे

भूतकाल

प्रथम पुरूष	हूँ (म्हू) केतो थो	तम केता था
मध्य पुरूष	तू (थूं) केतो थो	तम (थी) केता था
अन्य पुरूष	ऊ केतो थो	वी केता था

भविष्य काल

प्रथम पुरूष	हूँ (म्हूँ) कूंगा	हम कांगा
मध्य पुरूष	तू (थू) केगा	तम (थी) कोगा
अन्य पुरूष	ऊ केगा	वी केगा

सौंधवाड़ी बोली का उदाहरण : अतरा में वणी-को मोटो बेटो माल में थो ऊ माल में थी अपणा घर - के पां - हे आयो अर गीत गाल हामली। जंदी हाली ने तेड़ी ने पूछ्ये के अणी हगली बात को कांई मतलब है। हाली ने कही के - थां को लोड़ो भाई आयो हाउ अर थां - का जी ने रोठा कराया हे कि यूं के वी घणा हाऊतरा पाछा आई गयो। जंदी बड़ा बेटा ने री लागी अर घरे नी गयो। जंदी वणी का जी ने आवी ने वणी ने हमजाड्यो। जंदी वणी ने जी थी कयो म ने अतरा वर थी थां की चाकरी कीधी। थां का कीया बारे चाल्या नहीं। थां ने एक बकरी को बच्चों नहीं दीयो जो हूँ भाई - हेतू में गोठ-गूगरी करतों.....।

सौंधवाड़ी का गीत : बना जी थां क घोड़ी के गले घुंगर-माल। पावां का नेवर वाजण रे बनड़ा। बना जी थां का हाथां में हर्‌यो रूमाल। पावां की मेंदी राचणी रे बन - डा। बनाजी थें तो चढ़ चाल्या मज अधरात। मारी सूती नगरी ओजकी रे बन - डा।

2. उमटवाड़ी : मालवा के उत्तर पूर्व का क्षेत्र उमटवाड़ कहा जाता है। उसमें भूतपूर्व मध्यभारत राज्य के राजगढ़, नरसिंहगढ़, छापीहेड़ा आदि राजपूत - बहुत क्षेत्र, क्षेत्र के साथ ही खिलचीपुर, जीरापुर ओर माचलपुर का पूर्वी भाग भी सम्मिलित हैं।

श्री वल्लभ गुप्ता ने उमट शब्द की ऐतिहासिक विवेचना करते हुए कहा है कि राजस्थान के राजा मुंगराव की बड़ी रानी से उमरसी और सुमरसी नामक दो बेटों का जन्म हुआ। उमरसी के वंशज उमट परमार राजपूत कहलाये। उमरसी का दूसरा नाम ऊमजी भी था, जिससे बाद में उमट शब्द प्रचलित हुआ।

वंश भास्कर में भी 'उमट' संज्ञा का उल्लेख इस प्रकार मिलता है- 'उदयादित्य के पांचवेपुत्र सिंहधवल (सीधवल) के ऊमर तथा सुमर नामक पुत्र हुए जिनसे क्रमशः उमट सोड़ा शाखाएँ चली। एक मत यह भी है कि गुजरात के खेराल जिले (पालनपुर से दक्षिण) के उमरागाँव में रहने के कारण यहाँ के परमार उमट कहलाय। इन तथ्यों से दो बातें स्पष्ट होती है कि- 1. उमट राजपूतों की उत्पत्ति विषयक जानकारियाँ विवादस्पद हैं, 2. यह निर्विवाद है कि उमरसी राजपूत ही उमट राजपूतों के वंशज है।

उमटवाड़ी राजस्थान भाषा परिवार की एक सम्पन्न बोली है। इसमें लोक साहित्य की वाचिक परंपरा है। यह क्षेत्र उमट या उमट जाति के राजपूतों से भरा है। राजपूत- बहुत क्षेत्र होने से उमटवाड़ी और रांगड़ी में विशेष अंतर नहीं है। केवल दिशा-सूचक शब्दों में ही असामान्य भिन्नता है जो उसकी प्रवृत्ति को मालवी के अन्य उपभेदों से अलग करते हैं :

अनांग	-	इधर
उनांग	-	उधर
कनांग	-	किधर
जनांग	-	जिधर
ओलांग	-	इस या उस पार
पेलांग	-	उस पर या उस ओर

उमटवाड़ी पर हाड़ोती और बुंदेली का प्रभाव है। उमटवाड़ी की मुख्य विशेषताएँ :

1. आदर्श मालवी की भाँति इसमें भी ओकारान्त शब्द- रूप होते हैं तथा क्रियापदों में भी 'य' जोड़कर उन्हें ओकारान्त किया जाता है -

ओकारान्त शब्द रूप - आदर्श मालवी एवं उसकी उपबोलियों की तरह इसमें भी महाप्राण से अल्पप्राण की प्रवृत्ति मिलती हैं, यथा - भेंसो, घोड़ो, आदो, कांसो, अतरो आदि।

क्रियापद - भाग्यो, चाल्या, झेल्यो, आरोग्यो आदि। इसके अपवाद भी मिलते हैं, जैसे- चरायो, आयो, गयो, दियो, आजो आदि।

2. आदर्श मालवी एवं उसकी उपबोलियों की तरह इसमें भी महाप्राण से अल्पप्राण की प्रवृत्ति मिलती हैं, यथा :

सरीखा	-	सरीका
उभा	-	उबा
पधारे	-	पदार्‌या
आधा	-	आदो
हाथ	-	हात्

3. आदर्श मालवी की भाँति इसमें भी केवल दन्त्य 'स' का प्रयोग मिलता है। तालव्य 'श' का समाहार दन्त्य सकार में हो जाता है।

मसालची	-	मशालची

4. मध्यम और अन्त्य 'ह' कार के लोप की प्रवृत्ति भी इसमें मिलती है, यथा :

साहब	-	साब
भवानी सिंह	-	भवानी सिंघ
सिपाही	-	सिपाई

5. मूर्धन्य 'ळ' का प्रयोग उसमें मिलता है जो आदर्श मालवी की एक प्रमुख विशेषता है, यथा- अलग-अलग, मसाल, खाळ आदि।

6. 'ढ़' ध्वनि आदर्श मालवी की भाँति इसमें भी 'ड़' में बदल जाती है, यथा :

चड़ेती	-	चढ़ेती
राजगड़	-	राजगढ़

7. 'औ' स्वर यहाँ भी हस्व हो गया है, जैसे :

और	-	ओर

8. उमटवाड़ी के पूर्व में बुन्देली का क्षेत्र हैं अतः उस पर बुन्देली का प्रभाव भी द्योतित होता है। इस प्रभाव को व्यक्त करने वाले कुछ वाक्य-खंड आगे दिए जा रहे हैं :

(अ) छोड़बो होयो।
(ब) खेर बोर पुजबा पदारी।
(स) भेंसो मारवा की बड़ाई होई।
(द) खाढ़ हे कुदबो होयो।
(य) जद भेंसो आयो जे की गोडी बंदी थी।

बुन्देली का यह प्रभाव लोकगीतों भी देखा जाता है।

9. उमटवाड़ी पर रांगड़ी का प्रभाव भी हुआ है। नीचे उस प्रभाव को प्रकट करने वाले दो शब्द दिए जा रहे हैं- अवरो एवं तरवार। रांगड़ी में 'ल' का 'र' हो जाता है।

10. उमटवाड़ी के सर्वनाम आदर्श मालवी के ही निकट हैं, यथा :

	एकवचन		बहुवचन
प्रथम पुरूष	हूँ	-	हम
मध्य पुरूष	तम	-	तम-तमें (आप)
अन्य पुरूष	-	-	(उनका)

11. अधिकरण कारक की विभक्ति में- में, पे, के अतिरिक्त 'हे' का भी प्रयोग मिलता है, यथा :

(अ) जद घोड़ों भागो तो घोड़ा हे जायो लायो।
(ब) वाड़ा हे (बाड़े में)
(स) घर हे (घर में)

12. बहुवचन बनाने के लिए- 'न' और 'आ' प्रत्ययों का प्रयोग पाया जाता है, यथा :

(अ) आदमीन ने वीचारी के कंवर भवानीसिंघ जी की चड़ेती पाटी फे देखांगा।
(ब) लोई हेड़ के कुड़ान में झेल्यो.....।
(स) बकरा मंगा के उनका माथा काट्या।

भाषा रूप का उदाहरण **:** तीस चालीस बरस होआ जद कंवर भवानीसिंघ जी राजगढ़ पदार्या। जद रावती साब के पास का आदमीन ने वीचारी के कंवर भवानीसिंघ जी की चेड़ेती पाटी फे देखांगा और या बीचार के भेंसो चरायो। जद पड़वा पाटी आई और सवारी खेर बेर पुजबा पदारी जद भेंसो आयो जे की गोड़ी बंदी थी जो गोड्याँ फाटी जद रावत जी साब बरछा की दी अद भेंसो चाल्यो सो अतरो भाग्यो के जालपाजी की डुंगरी के नीचे गयो जद रावत जी साब ने कंवर भवानीसिंघ जी से कई के हूँ जाने थो के तम पीठ फेरी गया हो जद कंवर जी ने घोड़ा की लगाम खेंच के दो-तीन कोड्डा की दई जद घोड़ों भागो तो भेंसा हे जा लीयो। जद (भेंसी) को तो खाल से कुदबो होयो और कंवर भवानीसिंघ जी को तरवार को हात छोड़ - बो हो तो भेंसा का ढोल सरीका पुडा अलग-अलग हो गया। आदो अनांग और सादो उनांग गया ओर हेला पाड्या जद कंवर साब ने जुवाब दियो के हुं योउबो हूँ.....।

उमटवाड़ी लोकगीत का उदाहरण : 'चार खुण्या चार बावड़ी रे/ चारि पिराले पाट/ बटउड़ा ने मन मोयो/ ओच् छोरा हल हाकन्ता थारा काँइ लागे?/ ओच् छोरा हल हाकन्ता म्हारा बाजी लागे?/ भेंस्याँ दुवन्ता थारे काँई लागे? बटउड़ा..../ घुड़ला फैरन्ता म्हारा मामाजी लागे, बटउड़ा...../ कचेरी बैठन्ता थारा काँई लागे'

हिन्दी		मालवी
का	-	कैन
हमारा	-	अठारा
महेरबानी	-	महैरनबानगी
दोपहर	-	दुपैरा
दिल्ली	-	दिली
से	-	सु
फिक्र	-	फिकर
रखो	-	राखो
मत	-	मती
है	-	छै
अपना	-	अठारा
मैं	-	मि
जेल	-	जेर

लोक साहित्य और उमटवाड़ी भारतीय संस्कृति में अनेकता में एकता की बात उसकी विविधता में है। यहाँ के लोग अपने विचारों को अनुराग भावों में घुला-मिलाकर जीवन के सभी पहलुओं और उसमें पैठी सांस्कृतिक चेतना को विविध माध्यमों

से प्रगट करते आए हैं। अभिव्यक्ति के तमाम माध्यमों में भाषा सर्वाधिक प्रबल माध्यम है। जो वाणी से स्वरूप पाती है और जन आकांक्षाओं की द्योतक बनती है।

जन की यह शक्ति गतिशील है और परिवर्तन+धर्मिता के कारण अपना अस्तित्व बनाए रखने में समर्थ हैं। इसलिए उक्त उक्ति ''चार कोस पर पानी बदले आठ कोस पर बानी'' बड़ी अर्थपूर्ण है। भाषा और पानी जमीन से इस तरह जुड़े तत्व हैं कि ये जहाँ-जहाँ से होकर बहते हैं, वहाँ-वहाँ का आस्वाद अपने में समेट कर सदैव तरो+ताजा रखते हैं।

किसी क्षेत्र या अंचल का परिचय वहाँ की बोली के आधार पर ही प्राप्त किया जा सकता है। उमटवाड़ क्षेत्र में जो बोली वहाँ के लोक ने स्वीकारी उसे उमटवाड़ी की संज्ञा दी गई।

3. रजवाड़ी या रांगड़ी : डॉ. ग्रियर्सन ने रजवाड़ी या रांगड़ी बोली के क्षेत्र-विस्तार की चर्चा करते हुए इसे मालवे के उत्तर-पश्चिमी भागों में व्यवहृत बतलाया है। इस आधार पर इसके क्षेत्र की सीमा-रेखा निर्धारित की जावे तो वह उत्तर में मंदसौर जिले के गाँव जावद-तारापुर तक, दक्षिण में रतलाम को जोड़ने वाली सड़क पर स्थित हैं। पश्चिमी भाग में प्रतापगढ़ राज्य भी इसका क्षेत्र ठहरता है। इस प्रकार मालवे के एक बहुत बड़े भू-भाग को इसने घेर रखा है।

इस भू-भाग में बसे राजपूतों के व्यवहार में आने वाली बोली रांगड़ी है जो धीरे-धीरे अपना क्षेत्र प्रसार करके यहाँ की पूर्व प्रचलित बोली मालवी से एकप्राण हो गई है। ध्वनि और रूप की दृष्टि से रांगड़ी और मालवी में बहुत-सी समानताएँ मिलती हैं, परंतु इसकी कतिपय विशिष्ट प्रवृत्तियाँ भी हैं।

रांगड़ी की कुछ उल्लेखनीय प्रवृत्तियाँ

1. मालवी की भाँति इसमें भी आकारान्त पुल्लिंग संज्ञा शब्द ओकारान्त होते हैं, जैसे- तारो, आंवो, गेरो, पीणो, रोणो, ममणो इत्यादि।
2. मालवी एवं उसकी अन्य उपबोलियों की तरह इसमें भी 'औ' तथा 'ऐ' संयुक्ताक्षर 'ओ' एवं 'ए' में बदल जाते हैं, यथा :

   चौथा - चोथो
   पड़ौसी - पाड़ोसी
   चैत्र - चेत

3. इसमें 'अ' कभी-कभी 'ए' तथा 'इ' में भी विकसित हुआ मिलता है :

   अंधेरा - इन्दारो
   अहंकार - एंकार

4. मालवी तथा उसकी उपबोलियों की तरह इसमें भी आदि और मध्य स्वर 'इ' का लोप हो जाता है, यथा :

   दिन - दन
   पंडित - पंडत
   किनारा - कनारो या कराड़ो
   जालिम - जालम
   मुश्किल - मसकल

   पर कहीं-कहीं आदि ई 'ए' में भी बदलते पाए जाते हैं :

   ईमान - एमान
   फिर - फेर

5. 'उ' कार प्रायः 'अ' कार में परिवर्तित हो जाता है, जैसे :

   मुसलमान - मसरमान

मनुष्य - मनक
ठाकुर - ठाकर

6. रजवाड़ी में 'ल' विकास 'र' में तथा 'ब' का विकास 'व' मिलता है :

ल - र
बालक - बारक
कम्बल - कामरो
गोल - गोर

केवल मध्यम तथा अत्त्य 'ल' में ही यह परिवर्तन होता है।

ब - व
बाट - वाट
तालाब - तराव

पर उसके अपवाद भी मिलते हैं, जैसे - बाप, बाखड़ी, बारक आदि। रजवाड़ी की यह प्रवृत्ति मालवी से भिन्न हैं।

7. राँगड़ी या रजवाड़ी में मूर्धन्य 'ळ' का अभाव है। इस दृ-ि से यह मालवी तथा उसके अन्य उपभेदों से भिन्न है।
8. 'न' ध्वनि यहाँ 'ण' में बदल जाती है। मालवी में यह प्रवृत्ति नहीं है। इसे राजस्थानी का प्रभाव कहा जा सकता है, जैसे :

पानी - पाणी
मन - मण
रानी - रांणी
दाना - दाणो

9. रांगड़ी में 'स' और 'अ' ध्वनियाँ 'ह' कार में बदल जाती हैं, जैसे :

सास - हउ
श्रृंगार - (हणगार)

गुजराती और आसामी में भी यह प्रवृत्ति मिलती हैं, यथा :

ऐसो छो - एहो छो

10. मालवी तथा उसके अन्य उपभेदों की तरह यहाँ भी य - ज में उच्चरित होता है, यथा :

युक्ति - जुगत
यती - जती

11. महाप्राण से अल्पप्राण का उच्चारण भी इसकी एक प्रमुख प्रवृत्ति हैं, जैसे :

ख - क
दुःख - दक्
आंख - आंक
थ - द
दूध - दूद
धन्धा - धन्दो
घ - ग
बीघा - वीगा
बघार - वगार
फ - प

सफेद - सपेत
थ - त
हाथ - हात
बधुआ - वातरो

12. रांगड़ी में 'ष' का विकास 'ख' और 'स' में मिलता है, यथा :

औषध - ओखद (ओगद)
वर्षा - वरसात

13. रांगड़ी में शब्दों को विकृत करके बोलने की प्रवृत्ति है। मालवी तथा उसके अन्य भेदों में भी इसकी बहुलता है :

किशन - कसन्यो

14. अल्पप्राण से महाप्राण करके उच्चारण करने की प्रवृत्ति इस बोली में मिलती हैं, जैसे :

चढ़ना - छड़नो
निश्चित - नछित
चिटकना (म.) - छोंटणो
चड़स - छऽड़

15. मालवी तथा उसके अन्य भेदों के समान रांगड़ी में भी मध्य-स्वरागम स्वरलोप तथा व्यंजन लोप की प्रक्रिया होती है, जैसे :

स्वरागम -

चमड़ा - चामड़ो
लकड़ी - लाकड़ी
मक्षिका - माखी (की)
कर्म - करम
कर्तव्य - करतब

स्वरलोप -

परिवार - परवार

व्यंजन लोप -

कहावत - केणांत
कार्तिक - काती

16. शब्दान्त में 'डो' या 'ड़ा' हीनता के अर्थ में जोड़ा जाता है। यह प्रवृत्ति अपभ्रंश में भी रही है। मालवी के सभी उपभेदों में यह प्रवृत्ति मिलती है, यथा- बापड़ो, तूंतड्यो, गामड़ो आदि।

17. रांगड़ी में स्वराघात के कई उदाहरण मिलते हैं। उच्चारण के समय स्वर को ऊपर-नीचे या विलंबित कर देने से शब्दों के अर्थ में परिवर्तन हो जाता है, जैसे :

शब्द		अर्थ
पोर	-	बैठक का स्थान
पोऽर	-	गतवर्ष
होरो	-	गीले छोड़ को जलाकर बनाया जाने वाला पदार्थ
होऽरो	-	ससुर
मोरो	-	फीका
मोऽरो	-	बैल के मुँह पर बाँधी जाने वाली रस्सी
पूरो	-	घास का पूला
पूऽरो	-	पूर्ण

मांडो	-	विवाह
मांऽडो	-	आंगन में बनायी जाने वाली अल्पना
मोड़ो	-	देरी
मोऽड़ो	-	महुए का पेड़

18. रांगड़ी में 'न' की ध्वनि प्रायः 'ल' में बदल जाती हैं, जो प्रायः हिन्दी की अन्य बोलियों में भी मिलती हैं :

नोटिस	-	लोटिस
नम्बर	-	लंबर
नीम	-	लीमड़ो
निम्बू	-	लिम्बू

19. रांगड़ी में एकवचन संज्ञा शब्द-ओकारन्त होते हैं, पर बहुवचन में आकारान्त हो जतो हें। पुल्लिंग संज्ञा शब्दों में 'आ' प्रत्यय और स्त्रीलिंग संज्ञा शब्दों में 'या' प्रत्यय जुड़ता है, जैसे :

	एकवचन	प्रत्यय	बहुवचन
पुल्लिंग	छोरो	आ	छोरा
स्त्रीलिंग	रोटी	यां	रोट्यां

रांगड़ी के सर्वनाम : उत्तम पुरूष सर्वनाम रूप 'मू' या 'म्हू' होता है तथा कभी-कभी म्ह का भी प्रयोग होता है। बहुवचन में 'मी' 'म्ही' या 'म्हाँ' होगा। मध्यम पुरूष एकवचन का रूप 'थूं' तथा बहुवचन रूप 'थी' या 'थां' होता है। अन्य पुरूष एकवचन में 'ऊ' या 'वण' तथा बहुवचन में 'वी' तथा 'वणा' बोला जाता है।

	एकवचन	बहुवचन
प्रथम पुरूष	मू-म्हूँ	मी - म्हीं
	म्ह	म्हाँ
द्वितीय पुरूष	थूं	थी-थां
तृतीय पुरूष	ऊ-वण	वणा-वी

उत्तम पुरूष के सर्वनाम रूप 'मूं' या 'म्हां' एवं अन्य पुरूष (तृतीय पुरूष) के सर्वनाम रूप 'ऊ' तथा 'वी' मालवी के समान हैं।

अन्य सर्वनामों के रूप इस प्रकार हैं :

निकटवर्ती सर्वनाम	एकवचन	बहुवचन
	यो-अण-अणे	ई-अणा-अणाए
दूरवर्ती सर्वनाम	ऊ-वण-वणे	वी-वणा-वणाए
प्रश्नवाचक सर्वनाम	कूण-कण-कणे	कणां-कणांए
अनिश्चयवाचक सर्वनाम	कोई-कईक	
निजवाचक सर्वनाम	आप-आपणे	आपणे
आदरसूचक सर्वनाम	आप-थां-थांके	थी

कारक चिन्ह :

कर्त्ता	-	ने
कर्म	-	ने
करण	-	ती-ए
सम्प्रदान	-	बले-वास्ते-खातर
अपादन	-	से
संबंध	-	का-के-की-रा-रे-री
अधिकरण	-	में-पे-उप्पर

कर्म, कारण तथा अपादान कारक के चिन्हों के अतिरिक्त मालवी में रजवाड़ी की सभी विभक्तियों का प्रयोग उपलब्ध होता है। करण और अपादान की दोनों विभक्तियाँ (ती तथा ए) क्रमशः सौंधवाड़ी तथा गुजराती से साम्य रखती हैं। संबंध कारक की विभक्ति रा, रे, री के संबंध में यह स्मरणीय है कि यह रांगड़ी के बहुवचन में प्रयुक्त नहीं होती है।

क्रिया रूप - 'रहना' :

	एकवचन	बहुवचन
वर्तमान काल		
प्रथम पुरूष	मूँ (रूँ) हूँ	मीं रां हाँ
मध्य पुरूष	थी रो हो	थां रो हो
अन्य पुरूष	ऊ रे हे	वी रे हे
भूतकाल		
प्रथम पुरूष	मूँ रेतो थो	मीं रेता था
मध्य पुरूष	थी रेता था	थां रेता था
अन्य पुरूष	ऊ रेतो थो	वी रेता था
भविष्य काल		
प्रथम पुरूष	मूँ रूँ गा	मीं राँगा
मध्य पुरूष	थी रोगा	थाँ रोगा
अन्य पुरूष	ऊ रेगा	वी रेगा

रांगड़ी (रजवाड़ी) बोली का उदाहरण - (गद्य)

एक बादशा न गरीब आदमी : एक बादशा थो। ऊ हरेक गरीब आदमी के वणके दरबार में रोज बुलावतो ने वण के पांती नवी केणी केवाड़तो ने वण में अशो करार थो के बादशा हुंकारो भरे जतरे केणी पूरी नी वेणी छावे। ओर के वच में पूरी वेइगी तो केणी केवा वारा को माथो काटी न्हाकेगा। अशो करतां-करतां वणने घणां गरीबां का माथा काटी न्हाक्या। एक दिन एक एकल्लो मनक थो। वण ने खबर लागी के बादशा एक केणी रोजकेवाड़े। ऊ दरबार में ग्यो तो बादशा ने क्यो के अच्छा थूँ आयो तो थारी केणी हुँणाव (हूणा) मूँ हुँकारो दूँ जतरे केणी बंद करे मती नी तो थारो माथो काटी न्हाकूँगा ने मूँ हुँकारो दूँ जतरे केणी पूरी नी वेगा तो थने म्हारो आदो राज दूँगा। अबे गरीब ने केणी सरू कीदो ओर क्यो के अरे बादशा होश्यार वी ने हूँण। गरीब केणी केने बादशा हुँकारो दे।

गरीब ने क्यो - एक कोठो चांवर भर्‌यो। जण के तारो जड्‌यो। वण के हेणां में ती चांवर रेटा पड़े तो चड़ी-उड़ी ने आवे ने चांवर लीऽजा तो बादशा हुँकारा में के के, फेर कंई व्यो?

गरीब ने क्यो के.....फुर्र

बादशा ने क्यो के.....फेर कंई क्यो?

गरीब बोल्योके.....फुर्र

संदर्भ

मेलकाम ए मेमायस्र ऑफ सेन्ट्रल इण्डिया, पृष्ठ संख्या 25

आर.सी. मजूमदार -स्ट्रगल फार एम्पायार, पृष्ठ संख्या 68

एपि.एण्डि., पृष्ठ संख्या 232-238 उदयपुर और भाग 2, 180-85

आर.सी. मजूमदार -स्ट्रगल फार एम्पायार, पृष्ठ संख्या 68

आर.सी. मजूमदार -स्ट्रगल फार एम्पायार, पृष्ठ संख्या 70

तबकाते नासिरी -इलियट, पृष्ठ संख्या 175-76

बी.एन. लुणिया -युग युगीन धार, पृष्ठ संख्या 66

महाराज कुमार डॉ. रघुवीरसिंह -मालवा में युगान्तर, पृष्ठ संख्या 25
भोलानाथ तिवारी -हिन्दी भाषा (प्रवेश), पृष्ठ संख्या 145
डॉ. चिन्तामणि उपाध्याय -मालवी : एक भाषाशास्त्रीय अध्ययन, पृष्ठ संख्या 65
भारत का भाषा सर्वेक्षण, खंड 9, भाग- 2, पृष्ठ संख्या 281
भोलानाथ तिवारी -भाषा विज्ञान कोष, पृष्ठ संख्या 126

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,71-75**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 29 मार्च 2014

कर्मबद्धपर्याय -पूर्व तथा पश्चिम दृष्टिकोण

डॉ. संगीता जैन*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *कर्मबद्धपर्याय -पूर्व तथा पश्चिम दृष्टिकोण* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *संगीता जैन* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

बन्धन हमेशा दुखःदायी तथा कष्टकारक होता है। इसलिए किसी भी प्राणी को प्रिय नहीं होता। बन्धन की आन्तरिक पीड़ा मनुष्य के मन को क्षुब्ध, संतप्त और खिन्न बना देती है। कर्म बन्धन सभी बाह्य बन्धनों में प्रबल होता है। बाहरी बन्धन केवल शरीर से सम्बन्धित होता है जबकि कर्म बन्धन मूलतः आत्मा से सम्बन्धित होता है।

कर्म का आत्मा के साथ दूध और पानी की भाँति एक रूप में स्थित हो जाना बन्ध है। आत्मा चेतन है और कर्म जड़ है, किन्तु बन्ध की अपेक्षा से आत्मा व कर्म दोनों दूध-पानी की भांति एकत्र प्राप्त है जैसे- सोना और चांदी को एक साथ पिघलाकर भी सोना अपने पीलेपन के गुण को चांदी के श्वेत गुण से अलग रखता है यद्यपि तेजाब के प्रयोग से दोनों (सोने और चांदी) को अलग-अलग भी किया जा सकता है। इसी प्रकार आत्मा और कर्म दोनों एक रूप दिखाई देते है फिर भी स्वभाव से दोनों भिन्न है।

कर्म का आत्मा के साथ चिपकना कर्मबन्ध है। जिस आत्मा में रागद्वेष की चिकनाहट है उसी आत्मा से कर्म चिपकते हैं अन्य आत्माओं से नहीं। जैसे चुम्बक लोहे से चिपकता है लकड़ी या रबर से नहीं। क्योंकि उसका ऐसा ही स्वभाव है। जिसका जैसा स्वभाव होता है उससे वैसी ही क्रिया होती है।

कर्म स्वयं आत्मा से नहीं चिपकते किन्तु आत्मा स्वयं ही अपनी क्रियाओं द्वारा उन्हें अपनी ओर आकर्षित करती है और कर्म पुद्गलों को अपने में मिला लेती है। इसे ही व्यवहारिक भाषा में 'कर्मबन्ध' का होना कहा गया है। कर्मबन्ध के रहस्य से अनभिज्ञ मानव दूसरों को फँसाने के लिये नहीं अपितु स्वयं को फंसाने हेतु जाल बिछाता है और स्वयं कर्मों से बँध जाता है।

कर्मबन्ध करने वाली आत्मा पहले रागद्वेष के भावों से कर्मबन्ध कर लेती है। तत्पश्चात् वह द्रव्य के अर्थात् मन, वचन और काया द्वारा कर्म पुदगलों को ग्रहण करती है। वस्तु, व्यक्ति और परिस्थितियों के प्रति रागद्वेष का भाव आते ही कर्मबन्ध हो जाता है। एक व्यक्ति जब बाजार से गुजरता है तो रास्ते में मिठाई, आभूषण या वस्त्रों से सुसज्जित अनेक दुकानें

* रीडर, एडवांस्ड इन्स्टीट्यूट ऑफ एजुकेशन [मथुरा रोड, औरंगाबाद] पलवल (हरियाणा) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

उसे दिखाई देती हैं उसकी आंखों में भी सब वस्तुऐं प्रतिबिम्बित होती हैं। यह वस्तु अच्छी है और यह बुरी है इस प्रकार के भाव जागते ही कर्मबन्ध हो जाता है। यदि रागद्वेष के भाव न जागे तो कर्मबन्ध नहीं होता। जहां राग होता है वहां द्वेष अनिवार्य रूप से होता है और जहॉ द्वेष होता है वहॉ किसी न किसी के प्रति राग भी होता है। कोई भी चीज से तभी जुड़ता है जब उसमें रूखापन और चिकनापन दोनों पदार्थ हो। केवल आटा और चीनी से लड्डू नहीं बंधते, उसमें स्निग्धता और द्वेष रूक्षता है, इसी से कर्म बन्ध होता है।

राग और द्वेष का आत्मा प्रदेश के साथ मिलना भावबन्ध है। आत्मा जब मन, वचन और काया द्वारा क्रिया करते हुए कर्म-पुद्गलों को ग्रहण करती है तब द्रव्य रूप में बन्ध होता है। जिस प्रकार थर्मामीटर का पारा देखकर ज्वर की तारतम्यता का ज्ञान स्वतः हो जाता है, उसी प्रकार द्रव्य कर्म के बन्ध, उदय आदि से आत्मा के भावों का स्वतः अनुमान हो जाता है। इसी कारण कर्म-सिद्धान्त आत्मा के भावों को मापने का थर्मामीटर है।

जीवन जीने के दो दृष्टिकोण हैं। एक मनुष्य भविष्य को अनिश्चित और परिवर्तनशील माने। मनुष्य अपने भविष्य को जैसा चाहे वैसा संजो और निर्मित कर सकता है। यह उसके हाथ में है। इस दृष्टिकोण से मनुष्य को अथाह अशान्ति का सामना करना पड़ता है। यदि भविष्य अनिश्चित है, तो उसे संजोने संवारने के लिऐ आपको अशान्त होना होगा, आपको असंतुष्ट होना होगा। उसे बनाने का, संवारने का प्रयत्न करना पड़ेगा और भविष्य की बदलाहट भी तृप्ति, संतुष्टि नहीं दे सकेगी। क्योंकि बदलाहट की, भविष्य की, चाहत की, कोई सीमा नहीं होती। एक बदलाहट हजारों बदलाहटों को पैदा करती है। यदि किसी कारणवश बदलाहट संभव नहीं हुई तो गहन पीड़ा, उदासी और विपदा घेर लेती है और मन अशान्त, असंतृप्त हो जायेगा।

सामान्यतः जो है, उसका अभाव नहीं हो सकता और जो नहीं है उसका उत्पाद भी संभव नहीं है। भविष्य अगर अनिश्चित है तो मनुष्य अपने को हारा हुआ, अपने को पराजित मानता है। इस स्थिति में भविष्य अगर अनिश्चित है और मनुष्य के हाथ में इसका निर्माण है तो मनुष्य का परेशान होना निश्चित है।

पश्चिम ने इस दृष्टिकोण को अपनाया। पश्चिम मानकर चलता है कि अतीत तो निश्चित है, क्योंकि वह जा चुका है, वर्तमान जो हो रहा है, कुछ निश्चित है और कुछ अनिशिचित, और भविष्य पूर्णतया अनिश्चित है, जो अभी घटित नहीं हुआ है। यदि भविष्य अनिश्चित है तो उसे सजाने, संवारने हेतु अपना वर्तमान भविष्य के लिये अर्पित करना पड़ेगा। हमें आज से ही अपने भविष्य को संवारने हेतु कार्यरत होना होगा, ताकि अपने भविष्य को अपनी आकांक्षा अनुरूप बना सकें।

इस सबके परिणाम होंगे कि वर्तमान को आनन्दित करने का अवसर मेरे हाथ से निकल जायेगा। अपना वर्तमान मैं भविष्य को समर्पित कर दूँगा। मैं आज में न जीकर इस आशा से जीऊँगा कि मेरा कल, मेरा भविष्य, कल मेरी मनोनुकूल स्थिति अनुसार होगा। तब मैं उसका आनन्द लूँगा। पहली बात कि मुझे कल की चिंता सतायेगी। मुझे मेरा दृष्टिकोण परेशान करेगा। पश्चिम ने इस दृष्टिकोण पर कार्य किया और परिणाम स्वरूप गहन अशान्ति प्राप्त की। किन्तु भौतिक अर्थों में पश्चिम ने असीम अच्छाईयॉ प्राप्त की। भौतिकवाद में पश्चिम ने अपने जीवन को निर्मित करने में सफलता प्राप्त की।

एक तरह से देखा जाये तो पश्चिम ने भौतिकरूप से अपना भविष्य निर्मित करने में अपूर्व सफलता प्राप्त की। आज भौतिक सुख सुविधा की पश्चिम में भरमार हैं, पश्चिम ने यह सिद्ध कर दिया कि हम अपना भविष्य मन के अनुकूल बना सकते है। आज पश्चिम में भौतिक समद्धि बढ़ी हैं। बीमारियॉ कम हुई हैं, लोगों के रहने की, खाने की सुविधाऐं बढ़ी हैं जिससे उनकी उम्र बढ़ी है, समृद्धि के साधन बढ़े हैं, उन्होंने अपने भविष्य को अपने मन के अनुकूल निर्मित किया है।

लेकिन दूसरों अर्थों में पश्चिम हार गया। इस भौतिक समृद्धि को पाने में, इस भविष्य को बनाने में, मनुष्य अन्दर से विक्षिप्त हो गया, टूट गया। अब पश्चिम यह सोचने पर बाध्य हो गया कि भौतिक सुख समृद्धि उन्हें किस कीमत पर अर्जित हुई है। वह अन्दर से अशान्त हो गया ऐसी सुख सुविधा का क्या लाभ। यदि मनुष्य अन्दर शान्ति आनन्द को महसूस न करें। आखिर यह सब सुख समृद्धि मनुष्य के लिए है। मनुष्य सुख समृद्धि के लिये नहीं। यदि बाहरी समृद्धि मनुष्य के अन्तःस्थल को आनन्दित करने में विफल है तो सब बेकार है यह महंगा सौदा है। पश्चिम ने यह सिद्ध कर दिया कि मनुष्य चाहे तो अपने भविष्य को प्रभावित कर सकता है किन्तु प्रभावित करने में मनुष्य स्वयं नष्ट हो जाता है।

''बिना सन्तोष जीवन सदोष है। यही कारण है कि/ प्रशंसा यश की तृष्णा से झुलसा यह सदोष जीवन/ सहज जयघोषों की सुखद गुणों की/ सघन शीतल छांव से वंचित रहता है।'' आः विद्यासागर मूकमाटी (पृष्ठ संख्या 339)

पूर्व, भारत का दृष्टिकोंण दूसरा रहा है। भारत में मान्यता रही है कि मनुष्य भविष्य को निर्मित नहीं कर सकता। भविष्य नियति है अपरिहार्य है। जो होना है वही होगा। इसका दुष्परिणाम हुआ पूर्व भौतिक समृद्धि अर्जित करने में पीछे रह गया जनता गरीब रह गयी। बीमारियों ने परेशान कर दिया क्योंकि पूर्व ने भविष्य को नियति पर छोड़ दिया, भविष्य की चिंता नहीं की। पूर्व की मान्यता है कि जो होना है वह निश्चित है, कर्मबद्ध पर्याय अनुसार जो होना है वह निश्चित है। अतः कर्मबद्धता पर विश्वास रख हमने सब कुछ भविष्य पर छोड़ दिया। हमारा पुरूषार्थ कर्मबद्धता निमित के सहयोग स्वरूप रहा न कि उसे बदलने में। इस का सबसे बड़ा लाभ हुआ कि भविष्य की चिंता से जो विक्षिप्ता मनुष्य में पैदा हो सकती है उससे हम बच गये यद्यपि पूर्व भौतिक लाभ से वंचित रह गया। किन्तु कितने ही मनुष्य परम आनन्द को उपलब्ध हो सके। पश्चिम में एक महावीर एक कृष्ण अभी पैदा होना बाकी हैं। अभी भी पश्चिम चेतना की उन उँचाईयों को छूने में असमर्थ है जो भारत ने छुई हैं। इस सबका आधार सिर्फ एक था कि हमने कहा कि भविष्य निश्चित है जो होना है वह होगा उसे कोई टाल नहीं सकता।

''इस युग के दो मानव,/ अपने आप को खोना चाहते हैं/ एक भोगराम को,/ मद्यपान को चुनता है/ और एक/ युग त्याग को चुनता है/ कुछ ही क्षणों में दोनों होते/ विकल्पों से मूल/ फिर क्या कहना/ एक शव के समान निरा पड़ा है/ और एक/ शिव के समान खरा उतरा है।'' मूकमाटी आः विद्यासागर (पृष्ठ संख्या 286)

अगर भविष्य में जो होना है वह निश्चित है, वह होगा ही तो हमारे चिन्तित और परेशान होने का कोई कारण नहीं है। अतः यदि भविष्य निश्चित है तो अपने वर्तमान को भविष्य पर कुर्बान करने की आवश्यकता नहीं है। अपने वर्तमान में जियो और जी भर के जीयो। जिसे वर्तमान में जीना आ गया वह धन्य हो गया। देखा जाये तो वर्ममान ही हमारे हाथ में होता है भविष्य कभी नहीं। आज ही हमारे हाथ में है कल नहीं। यदि मन की यही आदत बन जाये कि आज को कल पर कुर्बान कर दूँ तो कल जब आयेगा वह आज ही बनकर आयेगा तो उसे भी मैं आने वाले कल पर कुर्बान कर दूंगा। कल जब भी आयेगा आज होकर आयेगा। इससे तो जीवन निरन्तर स्थगित होता रहेगा। हम जी नहीं सकेंगे क्योंकि कल तो कभी आता नहीं आता तो सदैव आज है। मुलाकात तो सदैव वर्तमान से होती है भविष्य तो कभी मिलता ही नहीं। लेकिन यदि मन की यह आदत हो जाये कि वर्तमान को भविष्य पर कुर्बान करना है तो मरते दम तक आप जी नहीं पायेंगे। केवल जीने का सपना मात्र देखेंगे। केवल भ्रम पालेंगे कि मैं जी रहा हूँ। पश्चिम ने भविष्य पर वर्तमान को कुर्बान कर भौतिक सुविधायें तो जुटा ली किन्तु जीवन के आनन्द से वंचित रह गये, पूर्व जीवन के भौतिक साधन न जुटा पाया किन्तु जीने की कला जीने का आनन्द पूर्व में उपस्थित रहा।

सत्य दोनों ही हैं भविष्य निर्मित किया जा सकता है यदि मनुष्य अपना वर्तमान भविष्य पर लुटा दे। भाग्य बदला जा सकता है यदि आप अपने को मिटाने को तैयार हैं किन्तु यदि आप अपने को जीवित रखना चाहते हैं और अपने होने का आनन्द लेना चाहते हैं तो फिर एक ही रास्ता है भविष्य निमित है।

आज पश्चिम हमारी पूर्व की तरफ टकटकी लगाये खड़ा है, उसे योग में और भोग में अन्तर समझ आ गया है। वह प्रेम, करूणा, ममता व दया का पाठ अब पूर्व से सीखना चाहता है। वर्तमान को भविष्य पर कुर्बान कर पश्चिम अपार भौतिक सम्पदा तो अर्जित कर पाया किन्तु जीवन के मूल्य खत्म हो गये। घृणा, वैमनस्य, क्रोध जीवन में बस गये। मनुष्य समृद्ध हो गया लेकिन मनुष्यता समाप्त हो गयी। पूर्व हाथ में पात्र लिये पश्चिम की और निहार रहा है। गंवाया पूर्व ने भी है मगर कुछ पाने के लिये कुछ खोना भी, पड़ता है। पश्चिम मन की शान्ति के लिये हमसे ध्यान, योग, तन्त्र, जप, पूजा तथा प्रार्थना के उपाय खोज रहा हैं और पूर्व मांग रहे हैं रोटी, कपड़ा और मकान। दोनों ही भिखमंगे हैं।

पश्चिम पहली बार समृद्ध हुआ है। जबकि भारत अनेकों बार समृद्धता की उँचाईयॉ छू चुका है। महाभारत गीता जब गठित हुई उस समय भारत समृद्धि के चरम शिखर पर था। भारत विज्ञान के शिखर पर था जिन अस्त्र-शस्त्रों का वर्णन गीता में मिलता है उनकी खोज आज पश्चिम में हो रही है। समृद्धि जब भी चरम शिखर पर पहुँचती है तो पतन अनिवार्य है, निश्चित है। मनुष्य जब अन्दर से दरिद्र हो जाता है तो हिंसा बढ़ती है; और हिंसा का अन्तिम परिणाम विनाश है।

''यह बात निश्चित है कि/ मान को टीस पहुँचाने से ही/ आतंकवाद का अवतार हुआ है/ अति पोषण या अति शोषण का भी/ यही परिणाम होता है/ तब/ जीवन का लक्ष्य बनता है शोध नहीं/ बदले का भाव.....प्रतिशोध/ जो कि/ महाअज्ञानता है दूर दर्शिता का अभाव/ पर के लिये नहीं/ अपने लिये भी घातक।'' मूकमाटी आः विद्यासागर (पृष्ठ संख्या 418)

कितनी ही विनाश की कहानियां जमीन के अन्दर दबी पड़ी हैं। मोहन जोदड़ो, हड़प्पा की खुदाई ने केवल सात आठ हजार साल पूर्व की सभ्यता को दर्शाया। अब तो खोज और पीछे लगभग 50 हजार साल तक ले गयी परन्तु भारत की मान्यता कि हम बहुत बार समृद्ध हो चुके, गलत नहीं है।

जैन धर्म के प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ तो लाखों वर्ष पूर्व प्रथम काल सुषमा में हुए थे। इसी काल में भरत चक्रवर्ती हुए, भगवान बाहुबली हुए। कल्पना की जा सकती है कि कितना समृद्ध होगा भारत उस समय।

जब भी समृद्धि बहुत बढ़ जाती है तो विनाश निश्चित है। जैसे जैसे मनुष्य बाहर से समृद्धि को प्राप्त करता है अन्दर से दरिद्र होता जाता है घृणा, बैमनस्य, क्रोध आदि विकार अन्दर घर बना लेते है। इन विकारों का जमावड़ा मनुष्य में हिंसा को जन्म देता है और हिंसा का अन्तिम परिणाम विनाश है।

आज पश्चिम में लोग आनन्द के लिये मनुष्य को मार रहे हैं, हिंसक होने का कोई कारण नहीं। पूछने पर पता चलता है कि मुझे इन्हें मारने में आनन्द आ रहा है। इस प्रकार विनाश आनन्द बढ़ता जा रहा है। सैकड़ों हत्यायें हो रही हैं केवल इसलिए कि मिटाने में आनन्द का अनुभव हो रहा है।

ऐसी स्थिति महाभारत के समय भारत में थी। दुर्योधन एक इंच जमीन देने को राजी नहीं हुआ वह मर मिटने को राजी था। केवल अहम और आनन्द के लिये द्रोपदी को राज्य सभा में नग्न करने को उतारू था ऐसी ही भाव्य दशा आज पश्चिम में खड़ी हो गयी है। विस्फोट कभी भी संभव है किसी भी क्षण एक छोटी सी चिंगारी काफी है।

भविष्य का तनाव ही कारण है। वह पीड़ा है और भविष्य की चिंता छोड़ना ही एकमात्र उपाय है। मनुष्य को यह मानने को सहमत होना होगा कि भविष्य अपरिहार्य है, नियत है, जो होना है वह होगा। यदि इस बात के लिये हम राजी हो जाये तो आपके करने के लिये कुछ बचता ही नहीं है और जब करने के लिये कुछ बचता नहीं है तो बैचेन होने का कोई कारण नहीं है।

यदि कुछ करना पड़े तो बेचेनी का कारण बनता है। करने के पहले भी बेचेनी रहेगी और करने के पश्चात भी, क्योंकि संतुष्टि तो मिलती नहीं। लगता है कि परिणाम और अधिक सुन्दर व्यापक हो सकते थे, इसे इस भांति करना था। भविष्य के लिये परेशानी आपका पीछा नहीं छोड़ेगी। भविष्य अर्थात् परेशानी।

लेकिन नियति को मानने वाला व्यक्ति अपने आप पर किसी प्रकार की जिम्मेदारी लेकर नहीं चलता वह निश्चित है कि जो होना है, जैसा होना है, जब होना है, वह वैसा ही होगा। अतः चिंता का कोई कारण नहीं, वह अपने वर्तमान से संतुष्ट है उसी में आनन्दित है।

धारणायें दोनों अपनी अपनी जगह ठीक हैं यह आपकी अपनी पसन्द है कि आप अशान्त होकर विक्षिप्त हो कर, धन सम्पदा, वैभव एकत्रित करना चाहते हैं या आप शान्ति, आनन्द और संतोष को चुनना चाहते है। झोपड़े में महलों का आनन्द प्राप्त करना चाहते हैं तो फिर निर्यात एक मार्ग है। मनसविध कहते है कि चार आदमियों में से तीन का मस्तिष्क खराब है, गड़बड़ा गया है। आखिर इस विक्षिप्तता का क्या कारण है। कोई न कोई कारण तो अवश्य होगा, क्यों आज मानव इतना अशान्त है क्या चल रहा है आपके अन्दर, यह विक्षिप्तता हमारी सोच, हमारी दृष्टि, हमारे चुनाव का परिणाम है। कहा है न कि, ''बोये बीज बबूल के/ आम कहां से होय।''

हमारी सोच कि हम अपने अहंकार से अपने जीवन को बदल सकते हैं। जैसा चाहे अपने जीवन को बना सकते हैं। भविष्य बनाना हमारे हाथ में है। नियति कुछ भी नहीं। निश्चित ही पश्चिम ने यह पथ चुना और कुछ हद तक अपने उद्देश्य में सफल भी हुए किन्तु किस कीमत पर कहते हैं न कि सबकुछ लुटाकर होश में आये तो क्या किया।

सम्पदा वैभव तो मिली मगर किस कीमत पर आन्तरिक सुख, शान्ति, आनन्द सब स्वाह हो गये। सामाजिक मूल्य धराशाही हो गये। शादी जैसे पवित्र बन्धन के स्थान पर लिविंग रिलेशनशिप को मान्यता मिलने लगी। एक ही उद्देश्य कि भविष्य को

संवारना है सजोना है उसे पाने हेतु झूठ, छल, कपट का भी सहारा लेना पड़ा यही कारण है कि आज मनुष्य, मुनष्य के खून का प्यासा हो गया है। मनुष्य को मानवता का खून बहाने में आनन्द आता है। भविष्य तो थोड़ा बहुत संवरने लगता है मगर किस कीमत पर.....मुनष्यता अस्तव्यस्त।

भारत ने यह अनुभव बहुत बार झेले हैं। कितने ही राम, रहीम, कृष्ण, बुद्ध और महावीर हुए और उद्देश्य छोड़ गये कि यदि जीवन को चिंता मुक्त रखना है तो निर्यात एक मार्ग है भविष्य अपरिहार्य है। जो होना है, जैसा होना है, जब जब जो होना है होगा। आप बीच में मत पड़ें आप भविष्य की चिंता मत करें। आज में, इसी क्षण में जीयें।

कल वास्तव में ऐसा ही है जैसे आप कोई उपन्यास पड़ रहे हैं कथा लिखी हुई है आप के विचार अनुसार आपकी सोच अनुसार परिणाम आने वाला नहीं, वह निश्चित है। भविष्य केवल अनफोल्ड हो रहा है यह भारतीय दृष्टि है।

''ऊपर अणु की शक्ति काम कर रही है। तो इधर-नीचे मनु की शक्ति विद्यमान है। एक मारक है और एक तारक। एक विज्ञान है जिसकी आजीविका तर्क से है। एक आस्था है जिसे आजीविका की चिन्ता नहीं।'' आः विद्यासागर मूकमाटी (पृष्ठ संख्या 249)

संदर्भ

मूकमाटी मीमांषा, भाग -2
कर्म जिज्ञासा -श्रुतपेती साध्वी युगल निधि कृपा 2009 वर्ष संस्करण द्वितीय,
C. Maitri Charitable Foundation, New Delhi.
ताओ उपनिषाद, भाग 1-2

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777
भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,76-77**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 12 मार्च 2014

न्यायिक सक्रियता

डॉ. मनोज कुमार राय*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *न्यायिक सक्रियता* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार राय* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सरकार के तीन अंगों- विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका का दायित्व अपनी जनता के हितों का संयोजन, संवर्धन एवं परिमार्जन करना होता है; किन्तु सरकार के प्रथम दो अंगों में से विशेषकर कार्यपालिका के द्वारा किसी कार्य के किये जाने से, अथवा अपने दायित्वों के निर्वहन में लापरवाही के परिणाम स्वरूप जनहित पर पड़ने वाले व्यापक दुष्प्रभावों को रोकने के लिये भारतीय संविधान के अनुच्छेद 32 में भारत के सर्वोच्च न्यायालय एवं राज्यों के अन्तर्गत विभिन्न उच्च न्यायालयों को विशेष अधिकार प्रदान किये गये हैं। यहाँ यह स्पष्ट कर देना चाहता हूँ कि संविधान में न्यायिक सक्रियता के विषय में किसी विशेष अनुच्छेद में स्पष्ट प्रावधान नहीं है, किन्तु न्यायिक सक्रियता से आशय मौलिक अधिकारों के विषय में स्थापित विभिन्न उप-बन्धों तथा व्यापक जनहित के मुद्दों पर स्थापित अन्य किसी उप-बन्धों पर आधारित सर्वोच्च न्यायालय एवं उच्च न्यायालय की व्याख्या से है।

सरल शब्दों एवं सामान्य भाषा में समझें तो न्यायिक सक्रियता से आशय किसी देश के सर्वोच्च न्यायालय एवं वहाँ के राज्यों के अन्तर्गत आने वाले उच्च न्यायालयों के द्वारा व्यापक जनहित के मुद्दों पर किसी व्यक्ति, गैर-सरकारी संस्था अथवा व्यक्तियों के समूह द्वारा लाये गये जनहित याचिकाओं पर विचार करना एवं सरकार अथवा सरकार के अंगों को ऐसे आदेश पारित करना जिससे व्यापक जनहित हो सके।

न्यायिक सक्रियता के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य को देखें तो पश्चिमी देशों विशेषकर ब्रिटेन, संयुक्त राज्य अमेरिका, कनाडा तथा आस्ट्रेलिया का इतिहास इस परिप्रेक्ष्य में काफी गौरवान्वित करता है। चूँकि भारत का संविधान अपने कई उप-बन्धों में ब्रिटेन, अमेरिका एवं कनाडा के संविधानों के समकक्ष है और कई मायनों में समरूपता भी दिखती है फिर भी सर्वोच्च न्यायालयों द्वारा दिखायी जाने वाली न्यायिक सक्रियता भारत में काफी विलम्ब से आयी।

भारत में न्यायिक सक्रियता के पितामह के रूप में जस्टिस पी0 एन0 भगवती को जाना जाता है। जिन्होंने सर्वोच्च न्यायालय के न्यायाधीश के रूप में सन् 1979 दिसम्बर में *कपिला हिंगोरानी* द्वारा दायर एक याचिका जिसमें बिहार की जेलों

* प्राचार्य, स्वामी विवेकानन्द इण्टर कॉलेज [महुजा, पकड़ी दूबे] गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

में बन्द कैदियों की दशा के विषय में था। इस याचिका की विशेष बात यह थी कि इसको किसी एक कैदी ने नहीं बल्कि कई कैदियों ने मिलकर दाखिल किया था, चूँकि याचिका *हुसैनआरा खातून* के नाम से थी इसलिये इस याचिका को *हुसैनआरा खातून बनाम बिहार राज्य* के नाम से भी जाना जाता है।

इस याचिका की विषयवस्तु के विषय में चर्चा करना इसलिये आवश्यक है क्योंकि इस याचिका को ही भारतीय लोकहितवाद का प्रारम्भ कहा गया है। याचिका में माननीय सर्वोच्च न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न था कि बिहार राज्य में लगभग 40,000 ऐसे कैदी जिनकी विभिन्न *सत्र* न्यायालयों के समक्ष वाद इसलिये लम्बित थे क्योंकि वे अपने पक्ष में गरीबी के कारण अधिवक्ता नहीं कर सकते थे। माननीय सर्वोच्च न्यायालय ने अपने आदेश में मुफ्त विधिक सहायता के सिद्धान्त को प्रतिपादित किया। साथ ही साथ सर्वोच्च न्यायालय ने *त्वरित* न्याय सिद्धान्त के तहत् इन सभी केसों के निपटारे तक सभी कैदियों को छोड़ने का आदेश पारित किया।

चूँकि संविधान के अनुच्छेद 39ए0 में यह सिद्धान्त दिया है कि *सामाजिक न्याय* का पालन कानून के माध्यम से त्वरित रूप से प्राप्त कराया जाये इसलिये भारतीय राजनीति में *आपातकाल* के पश्चात विभिन्न गैर-सरकारी संगठनों के माध्यम से पीड़ित पक्ष या पक्षों का समूह उच्चतम न्यायालय या उच्च न्यायालय से उपचार प्राप्त किये और कर रहे हैं।

चूँकि जस्टिस पी0 एन0 भगवती एवं जस्टिस बी0 आर0 कृष्ण अय्यर ने अस्सी के दशक में विभिन्न जनहित वाद की सुनवाई करते हुये न्यायिक सक्रियता के उदाहरण प्रस्तुत किये; इसीलिये कुछ प्रमुख वादों जिसमें आगरा में स्थित सुधार गृहों के रहने वालों की दशा के सुधार के लिये पारित आदेश अथवा कुलदीप नैय्यर द्वारा *टाडा* बन्दियों की दशा के विषय को 1995 में दाखिल याचिका में पारित आदेशों के परिप्रेक्ष्य में भी देखा जा सकता है।

झूठे लोकहितवाद के माध्यम से न्यायालय के दुरूपयोग को रोकने के लिये भारत के 38 वें मुख्य न्यायाधीश न्यायमूर्ति श्री एस0 एच0 कपाडिया ने जुर्माना भी अभिरोपित किया। इसे भी न्यायिक सक्रियता के रूप में देखा जा सकता है।

इस प्रकार हम देखतें हैं कि न्यायिक सक्रियता के रूप में भारत से सर्वोच्च न्यायालय एवं राज्य के उच्च न्यायालय लोकहितवाद के माध्यम से या स्वतः संज्ञान *सुओमोटो* के माध्यम से हस्तक्षेप कर के भारतीय गणतंत्र के गणों के हितों का परिमार्जन, परिवर्धन कर रहे हैं।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,78-86**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 09 अप्रैल 2014

मोहनदास करमचंद गांधी : जीवन समाज एवं राजनीति दर्शन

डॉ. विश्वनाथ मिश्र*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मोहनदास करमचंद गांधी : जीवन समाज एवं राजनीति दर्शन* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *विश्वनाथ मिश्र* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, विनय और सेवा की अनवरत साधना के द्वारा एक साधारण मनुष्य कैसे महामानव के रुप में प्रतिष्ठित हो सकता है, मोहनदास करमचंद गांधी का जीवन एवं कर्म इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। यद्यपि गांधी ने अनेक अवसर पर कहा कि 'मेरा जीवन ही मेरा संदेश हैं' और वे कोई नयी बात नहीं कह रहे हैं' सत्य और अहिंसा उतने ही पुराने हैं जितना हिमालय' तथापि, अकादमिक जगत एवं नागरिक समाजों में गांधीवाद एवं गांधीमार्ग को लेकर सम्पूर्ण विश्व में व्यापक परिचर्चा है। जहाँ परम्परा समर्थक एवं परम्परा विरोधी दोनों ही अपने तर्क का समर्थन गांधी चिंतन में खोजते हुए मिल जाते हैं वहीं आधुनिकतावादी और उत्तर-आधुनिकतावादी भी गांधी को अपने पक्ष में खड़ा करने हेतु प्रत्यनशील दिखाई पड़ते हैं। समाज-वादियों ने भी अपने को गांधी के साथ जोड़कर गांधीवादी समाजवाद का सृजन कर लिया है और अराजकतावादियों ने गांधी को नैतिक अराजकतावादी बताकर अपने से जोड़ा है। गांधी के प्रशंसकों की दुनियाँ भर में जहाँ एक लम्बी जमात है वहीं उनके विरोधियों की भी कमी नहीं है। एक ओर गांधी को जहाँ आदर्शवादी बताया जाता है, वहीं दूसरी ओर गांधी को प्रयोगवादी और व्यवहारवादी सिद्ध करने के भी पर्याप्त तर्क उपस्थित हैं। गांधी के चिन्तन, कर्म और जीवन के सम्पूर्ण कलेवर को एक साथ देखने पर सम्पूर्ण मानव जाति के इतिहास में वे अतुलनीय दिखाई पड़ते हैं। गुरुदेव रविन्द्र नाथ ठाकुर द्वारा भले ही गांधी को महात्मा का सम्बोधन प्राप्त हुआ हो, किन्तु गांधी के कर्मों एवं विचारों ने यथार्थतः उन्हें जन मानस में महात्मा के रुप में प्रतिष्ठित कर दिया है।

2 अक्टूबर 1869 को गुजरात के पोरबन्दर नामक स्थान में गांधी का जन्म हुआ। अपने पिता करमचन्द गांधी के चार संतानों में गांधी सबसे छोटे थे। अपने पिता से ही गांधी को अनुशासन प्रियता की सीख मिली एवं माता पुतली बाई से गांधी को धर्माचरण की प्रेरणा प्राप्त हुई। अपनी आत्म कथा 'सत्य के साथ मेरे प्रयोग' में गांधी ने अपने को साधारण श्रेणी का विद्यार्थी बताया है। साधारण विद्यार्थियों की ही उनका तरह पढ़ाई में मन नहीं लगता था। पर उलाहना सहने के भय से वे पाठ याद करते थे। किन्तु, शिक्षकों के प्रति गांधी अविनयी न थे। तेरह वर्ष की अल्पायु में ही कस्तूरबा से

* असिस्टैन्ट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र विभाग, आर्य महिला पी. जी. कॉलेज वाराणसी (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

गांधी का विवाह हो गया। यह सब गांधी को साधारण मनुष्य की धरातल पर ही रहने देने के लिए पर्याप्त थे। हाईस्कूल में ही पिता से चोरी करके गांधी ने मदिरा पान किया। पश्चाताप की वेदना में पिता को पत्र लिखा। पिता द्वारा कुछ भी न कहने, किन्तु पिता कि आखों से गिरते हुए आसुओं ने पहली बार गांधी को प्रेम और अहिंसा की उस शक्ति से परिचित कराया जिसके प्रयोग से गांधी ने भौतिक शक्ति के बल को अत्यन्त तुच्छ साबित कर दिया। ऐसी ही घटना पत्नी के साथ प्रेमासक्त होने के कारण मृत्यु शैय्या पर पड़े पिता के समक्ष न रहने और उनकी अनुपस्थिति में ही पिता का देहान्त, गांधी के लिए ऐसी हृदय विदारक घटना थी जिसने गांधी को अधीरता और आशक्ति की वृत्ति को परिमार्जित करने के लिए प्रेरित किया।

1887 में तृतीय श्रेणी से हाईस्कूल की परीक्षा उत्तीर्ण होने के उपरान्त गांधी ने कालेज शिक्षा के लिए भावनगर के शामलदास कालेज में प्रवेश लिया। किन्तु, विधि स्नातक की शिक्षा प्राप्ति हेतु स्वर्गवासी पिता के इच्छा के सम्मान और अपने अग्रज द्वारा लन्दन में विधि शिक्षा प्राप्ति हेतु धन की व्यवस्था कर दिये जाने के कारण गांधी ने लन्दन के लिये प्रस्थान किया। वे बड़ी बेबाकी से लिखते हैं कि शिक्षा प्राप्ति हेतु लन्दन जाना उनके लिए आकर्षण का विषय नहीं था। वे यह सोचकर लन्दन जा रहे थे कि वहाँ परिवार से दूर रहने पर अनिच्छा पूर्वक पढ़ाई करने के ताने से वे बच सकेंगे। लन्दन के विख्यात इनर टेम्पल में प्रवेश के पश्चात भी विधि की परिपाटी गत अध्ययन- अध्यापन ने उन्हे आकर्षित नहीं किया। किन्तु, भाषा तथा पोषाक एवं व्यवहार की ऐसी बारीकियों को सीखने का प्रयत्न गांधी ने अवश्य किया जो एक सभ्य अंग्रेज से उन दिनों अपेक्षित था। 1891 में गांधी ने विधि स्नातक की उपाधि प्राप्त की। 11 जून 1891 को उन्होंने अधिवक्ता के रूप में कार्य करने हेतु लन्दन के हाईकोर्ट में पंजीयन कराया और 12 जून 1891 को गांधी स्वदेश हेतु रवाना हो गये। भारत आने पर गांधी ने कुछ समय के लिए अध्यापन का कार्य करना चाहा पर अवसर नहीं मिला। अधिवक्ता के रूप में कार्य करते हुए भी गांधी के लिए सफलता के लक्षण प्रायः नहीं थे।

1893 में गांधी को एक मुकदमे में पैरवी के लिए दक्षिण अफ्रीका जाने हेतु निमंत्रण मिला। गांधी की दक्षिण अफ्रीका की इस यात्रा में जिसे गांधी स्वयं नहीं जानते थे एक ऐसी घटना साबित होने जा रही थी जिसमें एक साधारण मानव में महामानव बनने का बीजारोपण होना था। दक्षिण अफ्रीका में गांधी को मुकदमे की पैरवी के लिए डरबन से प्रिटोरिया जाना था। इसी रेल मार्ग पर ट्रांसवाल की राजधानी मेरित्सबर्ग में टिकट परीक्षक ने अपने दो गोरे सहयोगियो के साथ प्रथम श्रेणी में वैध टिकट होने पर भी चमड़ी का रंग काला होने के कारण अपमानित करता हुआ गांधी को समान सहित नीचे उतार दिया। इस सामाजिक अपमान और इसको उत्प्रेरित करने वाली विधि तथा राजनीतिक व्यवस्था की प्रचंण्ड भौतिक शक्ति और उसके समक्ष अपनी ही कमियों के कारण असहाय साधारण मानव पर विचार करते हुए गांधी ने मेरित्सबर्ग की वह सर्द रात स्टेशन पर गुजारी। प्रतिरोध स्वरुप गांधी ने कुछ नहीं किया और अपने कार्य हेतु अगले दिन पुन रंगभेदी जलालत सहते हुए प्रिटोरिया चले गये। प्रिटोरिया पहुँचकर गांधी ने एक सप्ताह के भीतर वहाँ के भारतीयों की सभा बुलाई जिसमें उन्होंने अपने भाषण में सत्य बोलने, जाति-पाति और अशुचिता के आचरण को त्यागने तथा अंग्रेजी सीखने पर बल दिया। इस तरह कई सभाओं का आयोजन गांधी ने किया और जब मुकदमा निर्धारित होने पर गांधी वापस डरबन लौट रहे थे तब प्रिटोरियावासी भारतीयों ने अपना एक संगठन बना लिया था। यह एक संगठनकर्त्ता के रूप में अपनी क्षमता पहचानने के लिए गांधी को मिला एक अवसर था। डरबन से भारत वापसी की तैयारी में लगे गांधी को उनके सहयोगियों ने समारोहपूर्वक विदाई भी कर दी थी किन्तु 'नेटाल मर्करी' की यह खबर कि विधान मण्डल में सदस्य चुनने के अधिकार से भारतीयों को वंचित करने हेतु दक्षिण अफ्रीका की रंगभेदी सरकार विधेयक लाने वाली है, गांधी को रोक लिया। गांधी ने इस विधेयक का विरोध हेतु साथियों से आह्वान किया। गांधी के सहयोगियों ने इस कार्य में उनके सहयोग की याचना की। गांधी इस निमित्त एक महीना रुकने हेतु तैयार हो गये और फिर बीस वर्षो तक वहाँ रहते हुए गिरमिटिया मजदूरों के हितों की रक्षा में सफल संघर्ष चलाया।

दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष काल में गांधी में सभ्य अंग्रेजों की तरह पोशाक पहनने की आदत में तो परिवर्तन नहीं आया किन्तु, उनमें आन्तरिक रुपान्तरण का वह क्रम आरम्भ हो गया जो शनैः शनैः गांधी को निष्काम कर्मयोगी और परमतत्व के सार्वभौमिक उपस्थिति से साक्षात्कार की ओर निरन्तर अग्रसर करता गया। जिस निष्क्रिय प्रतिरोध का प्रयोग तिलक ने

बंगाल विभाजन के अवसर पर प्रारम्भ किया और माँग से पहले योग्यता (डिजर्व देन डिजायर) की जिस बात पर गोखले बल दिया करते थे उसे गांधी ने दक्षिण अफ्रीका के अपने अहिंसक संघर्ष में व्यवहृत करके दिखा दिया था। गांधी ने सदैव अपने उद्देश्य को सर्वव्यापक मानवता के कल्याण की दृष्टि से परिभाषित किया। दक्षिण अफ्रीका में भी गांधी के संघर्ष का उद्देश्य भारतीयों के साथ गोरों के समान व्यवहार करने के उद्देश्य तक सीमित नहीं था। उन्होंने इस लक्ष्य के लिए संघर्ष किया जब भारतीय भी ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक है तब उन्हें भी विधि के अन्तर्गत वही अधिकार और स्वतन्त्रता प्राप्त होने चाहिए जो अंग्रेजों को प्राप्त है। आगे चलकर गांधी का यह उद्देश्य विराट स्वरुप ग्रहण करता हुआ इस अर्थ में पहुँच जाता है कि किसी मनुष्य को दूसरे मनुष्य के शोषण का अधिकार नहीं है। गांधी की इस दृष्टि ने ही भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में गांधी के आगमन के बाद भारतीय स्वतन्त्रता के प्रश्न को मानवजाति की स्वतन्त्रता के प्रश्न के रुप में परिवर्तित कर दिया।

सुकरात और ईसा मसीह की तरह गांधी ने दक्षिण अफ्रीका के अपने संघर्ष में और कालान्तर में भारतीय स्वतन्त्रता के अपने संघर्ष में विरोधियों को क्षमा करके दिखाया। विरोधियों को उन्होंने हमले का अवसर ही नहीं दिया अपितु विचलित हुए बिना उनके दुराग्रहों एवं आक्रमण का सहन किया। 1899 से 1902 के मध्य दक्षिण अफ्रीका के बोअर विद्रोह मे गांधी ने बोअरो से सहानुभूति रखते हुए भी अंग्रेजों के पक्ष में भारतीय सैनिकों की नियुक्ति हेतु प्रयत्न किया। यह बोअर लोगों की उचित माँगो की पूर्ति हेतु अनुचित तरीके के प्रयोग के विरुद्ध प्रतिक्रिया थी। किन्तु, गांधी ने मानवता के धर्म का पालन करते हुए घायलों की सेवा के लिए एक दल तैयार किया जिसमें लगभग 300 स्वतन्त्र भारतीय एवं 800 गिरमिटिये मजदूर थे। इस घटना के पीछे गांधी की सत्य के सभी पक्षों को देखने और समझने की दृष्टि का जो आभास मिलता है वह समय के साथ-साथ गहरा ही होता चला गया। फलतः गांधी आंशिक सत्य को पूर्ण सत्य तक पहुँचाने का मार्ग मानकर उस पर चलते गये। उन्होंने निरपेक्ष सत्य की प्राप्ति और उसकी खोज में स्थिर हुए बिना अपनी यात्रा जारी रखी।

दक्षिण अफ्रीका के संघर्ष काल में गांधी ने एक सफल अधिवक्ता के रुप में भी अपने को स्थापित कर लिया था। आजीविका के इस साधन को गांधी ने अधिवक्ता के प्रचलित धर्म से परे विवादों का निस्तारण कचहरी से बाहर सुलह एवं मध्यस्थता से कराने में विशेष ध्यान दिया। 1903 में गांधी ने 'इंडियन ओपीनियन' नामक साप्ताहिक पत्र आरम्भ किया और डरबन के पास 1904 में फिनिक्स की स्थापना की। फिनिक्स की स्थापना का विचार गांधी के मन में जॉन रस्किन की पुस्तक 'अन टू दिस लास्ट' को पढ़कर आयी। यह पुस्तक गांधी को एस0 एल0 पोलक ने दी थी। इस पुस्तक के सन्दर्भ में गांधी का कहना है कि इस पुस्तक ने मेरी जीवन धारा बदल दी वे लिखते हैं कि 'यह पुस्तक रक्त और आंसुओं से लिखी गई है।' वे अपने उपर श्रीमद्भगवतगीता के प्रभाव को भी स्वीकार करते हैं।

गांधी ने वासनाओं पर विजय पाने के प्रयत्न के रूप में 1906 में ब्रह्मचर्य का व्रत लिया और मृत्युपर्यन्त इस व्रत का पालन करते रहे। गांधी ने इन्द्रियों के दमन के रूप में ब्रह्मचर्य का व्रत नहीं लिया बल्कि इन्द्रियों की सद्वृत्तियों के परिमार्जन के रूप में इस व्रत का उपयोग किया। जैसे-जैसे गांधी में ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठित होता गया गांधी ईश्वरीय अनुदेशों के अनुकूल अपने को ढालते गये। 1906 में दक्षिण अफ्रिका की रंगभेदी सरकार के पहचान पत्र नीति के अनौचित्य के विरूद्ध गांधी ने जिस सामूहिक प्रतिरोध के व्यक्तिगत नीति का सूत्रपात किया उसका नाम सत्याग्रह रखा। मगन लाल गांधी ने इसके लिए सदाग्रह शब्द सुझाया था किन्तु मोहनदास करमचंद गांधी ने इस शब्द को संशोधित रूप में स्वीकार किया। 30 जून 1914 को सत्याग्रह एंव अहिंसा की भौतिक बल पर आधारित शक्ति पर अन्ततः लम्बे संघर्ष के बाद तब विजय प्राप्त हुई जब रंगभेदी पहचान पत्र की नीति को सरकार ने समाप्त किया। 9 जनवरी 1915 को गांधी स्वदेश भारत वापस आ गये।

दक्षिण अफ्रीका से जब मोहनदास करमचंद गांधी भारत वापस आये तब भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन के रंगमंच पर उदारवादी युग का पटाक्षेप हो चुका था और उग्रवादी अपनी जड़े जमा रहे थे। बाल गंगाधर तिलक, गोपाल कृष्ण गोखले, पं0 मदन मोहन मालवीय सरीखे जन नायकों के बीच अपनी उपस्थिति दर्ज करा पाना किसी के लिए भी महान चुनौती से कम नहीं थी। क्योंकि, यह सभी निष्ठा, सात्विकता, कर्मपरायणता और उज्जवल चरित्र तथा राजनीतिक समझ के देदीप्यमान नक्षत्र थे। तिलक के नेतृत्व में स्वदेशी, बहिष्कार और निष्क्रिय प्रतिरोध का एक व्यापक जन आंदोलन भी सम्पन्न हो चुका था जिसमें बंगाल विभाजन की घोषणा को ब्रिटिश सरकार ने वापस लिया था। किन्तु, दक्षिण अफ्रीका में सत्याग्रह के सफल प्रयोग, संगठन

की अद्‌भुत क्षमता और संवाद स्थापित करने की गांधी की कला के व्यापक चर्चे भारत में थे और गांधी किसी नायक से कम नहीं थे। तथापि, भारत आकर गांधी ने तिलक, गोखले और मालवीय रुपी समवेत किन्तु यत्र-तत्र विच्छिन्न हो जाने वाली रश्मियों को अपने में इस प्रकार समाविष्ट किया जिसने गांधी को भारतीय स्वतन्त्रता के देदीप्यमान सूर्य के रुप में प्रतिष्ठित कर दिया।

फिनिक्स का प्रयोग भारत आकर साबरमती के आश्रम के रुप में रुपान्तरित होकर परिष्कृत स्वरुप ग्रहण किया और इंडियन ओपिनियन के प्रयोग ने हिन्दी के हरिजन और अंग्रेजी के यंग इंडिया के रुप में आकार लिया। शारीरिक श्रम की महत्ता, चरखा और स्वदेशी के रुप में गांधी के प्रयत्नों से इस तरह जन आंदोलन का सूत्रपात हुआ जो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के आर्थिक पहलू को जड़ विहीन करने के साथ-साथ करोड़ों संतप्त भारतीयों में आत्म संयम और स्वाभिमान का वाहक सिद्ध हुआ। अब तक वैचारिक रुप से गांधी दृढ़ हो चुके थे। पूना में फैले प्लेग ने गांधी को सार्वजनिक स्वच्छता के अभियान का वह अवसर उपलब्ध कराया जिसमें शौचालयों का निरीक्षण और सफाई का ऐसा कार्य सम्मिलित था जिसे सम्पादित करना तब के ख्याति नामा भारतीय नेताओं के लिए पाप जैसा ही था। भारत में सेवा धर्मी गांधी का यह कार्य उन्हें आम जनता की परिस्थितियों से जहाँ परिचित होने का अवसर और प्रेरणा प्रदान करता है, वहीं वे विवेकानन्द की तरह 'दरिद्र नारायण' की सेवा में सत्य रुपी ईश्वर के प्राप्ति का मार्ग ढूढते हैं। परन्तु, इससे भी आगे बढ़कर वे फकीरों सदृश वस्त्र धारण एवं आत्म निग्रही जीवन के माध्यम से हरिजनों से तादात्म्य भी स्थापित कर लेते हैं।

प्रथम विश्वयुद्ध के समय गांधी ने युद्व प्रयत्नों में ब्रिटेन का पुनः उसी प्रकार समर्थन किया जिस प्रकार उन्होंने बोअर युद्ध के समय अंग्रेजों का किया था। इस समय उनका तर्क था कि वे ब्रिटेन के कमजोर स्थिति का लाभ उठाकर भारतीय समस्या का हल नहीं चाहते हैं। इस महायुद्ध में गांधी द्वारा भारतीयों का सेना में भर्ती हेतु चलाये गये अभियान पर में तीखी प्रतिक्रिया हुई। ऐसी प्रतिक्रियाओं में प्रायः गांधी के उस पहल को भुला दिया जाता है जो उन्होंने चम्पारण सत्याग्रह के माध्यम से अंग्रेज मालिकों द्वारा नील की खेती के लिए बाध्य किये जा रहे गरीब किसानों के हितों की रक्षा के लिए किया था। इन दोनों घटनाओं को साथ रखकर समझने से इतना तो स्पष्ट हो ही जाता है कि गांधी किसी भी प्रकार से व्यक्तिगत उपलब्धि के लिए राजभक्ति का प्रमाण नहीं प्राप्त करना चाहते थे। वे तो यह स्थापित करना चाहते थे कि मानव मात्र के साथ समानता पूर्वक किए जाने वाले व्यवहार से ही सहयोग, शान्ति और समृद्वि सम्भव है। युद्ध प्रयत्नों में सहयोग से उत्पन्न होने वाले जिस सहानुभूति की अपेक्षा गांधी को थी उसे रौलट एक्ट ने एक झटके से नष्ट कर दिया। विश्वयुद्ध जनित परिस्थितियों नें 1916 के काग्रेस के लखनऊ अधिवेशन में नरमपंथियों एवं गरमपंथियों को एकजुट कर दिया था। इसी तरह खिलाफत के प्रश्न पर हिन्दू-मुस्लिम एकता के लक्ष्य को प्राप्त करने का भी माहौल विद्यमान था। ऐसे में जब देश में ब्रिटिश शासन के खिलाफ जन आन्दोलन के लक्षण स्पष्ट दिख रहे थे जलियावाला बाग काण्ड ने जन आक्रोश को अत्यन्त तीव्र कर दिया। ऐसी परिस्थितियों में गांधी ने 1920 ई0 में असहयोग आन्दोलन के लिए देश का आहवान किया। इस आन्दोलन में गांधी ने नरमपंथियों के प्रेयर, प्रोटेस्ट एवं प्लीडिंग की नीति के साथ-साथ चरमपंथियों के राष्ट्रीय शिक्षा, स्वदेशी एवं बहिष्कार की नीति का सम्मिलित रूप से प्रयोग किया। यद्यपि चौरी-चौरा के घटना क्रम के कारण गांधी ने हिंसक हो जाने के कारण इस आन्दोलन को वापस ले लिया। किन्तु, सामाजिक प्रभाव उत्पन्न करने की दृष्टि से, भारतीय जनमानस में आत्मगौरव जगाने जगाने की दृष्टि से और सामाजिक जड़ता को तोड़ने में योगदान की दृष्टि से यह आन्दोलन अद्वितीय सिद्ध हुआ। इस आन्दोलन ने गांधी की भारतीय जन मानस की समझ और भारतीय जनता को उत्प्रेरित करने की अद्‌भुत क्षमता को विश्व पटल पर ला दिया। भले ही असहयोग आन्दोलन का गांधी द्वारा स्थगन अनेक नेताओं के लिए वज्रपात सा साबित हुआ, विशेषकर उनके लिए जो स्वराज्य प्राप्ति का स्वप्न देखने लगे थे। किन्तु, गांधी की सत्य एवं अहिंसा के प्रति भक्ति को इस घटना ने संदेह की सीमाओं से ऊपर स्थापित कर दिया।

गांधी निरन्तर कर्म में निर्लिप्त भाव से लगे रहने वाले कर्मयोगी थे। सार्वजनिक स्वच्छता, सार्वजनिक शिक्षा, सार्वजनिक जागरूकता, आत्म संयम का अभ्यास, स्त्रियों एवं हरिजनों की स्थिति में सुधार, कुरीतियों के उन्मूलन आदि के लिए गांधी उनका आश्रम एवं उनके सत्याग्राही निरन्तर लगे रहते थे। बड़े आन्दोलनों के दिनों भी इनके प्रति समभाव ही नहीं रहता था अपितु इन प्रवित्तियों में प्रबलता आ जाती थी। फिर भी आंदोलन की दृष्टि से भारत में साइमन कमीशन की विफलता

से उपजने वाली स्थिति जिसने भारतीय स्वतन्त्रता और भारतीयों द्वारा संविधान की माँग को अनिश्चित काल के लिए टाल दिया था, गांधी को पुनः आगे आने का अवसर दिया। इस समय सत्य, अहिंसा एवं सत्याग्रह का प्रयोग सविनय अवज्ञा के संस्करण में हुआ। गांधी ने विनय एवं अहिंसा का पालन करते हुए आंदोलन के गतिमान रहने पर एक वर्ष के भीतर स्वराज्य प्राप्ति का भरोसा दिलाया था। यद्यपि सविनय अवज्ञा की परिणति इस रुप में तो नहीं हुई और यह आंदोलन धीरे-धीरे विच्छिन्न सा हो गया। किन्तु, इस आंदोलन ने जन जागरुकता की वह लहर उत्पन्न की जिसमें ब्रिटिश शासन का लम्बे समय तक भारत में टिके रहने की बुनियादी दावे पर ब्रिटेन में भी विचार-विमर्श होने लगा।

सविनय अवज्ञा के ही काल में रैम्जे मैक्डानल्ड के साम्प्रदायिक अधिनिर्णय के विरोध में गांधी के जीवन का सबसे लम्बा उपवास और पूना पैक्ट के रुप में उसकी परिणति, भारतीय समाज की एकता को बनाये रखने में गांधी के महान योगदान को रेखांकित करता है। यद्यपि, इस प्रसंग में आलोचकों ने यह कहा है कि दलितों हेतु पृथक निर्वाचन क्षेत्र के स्थान पर सीटों के आरक्षण की व्यवस्था से प्रायः अम्बेडकर सहमत थे और गांधी को आमरण अनशन करने की जरुरत नहीं थी। किन्तु, इस संदर्भ में इस पक्ष को संज्ञान में रखने की जरुरत है कि गांधी के अनशन ने दलितों एवं सवर्णों में विद्वेषगत दोषों को मिटाने में रामबाण का काम किया था। सवर्णों ने स्वयं पहल करके अछूतों को मंदिरों में प्रवेश दिलाया। शताब्दियों से सवर्णों के अछूतों के घर में भोजन की निषिद्धता को गांधी के अनशन ने भंग कर दिया था। विधिक सुधारो एवं सामाजिक कार्यकर्ताओं के पहल तथा संतो की वाणी का वर्षों-वर्षों में जो प्रभाव हो सकता है, वह प्रभाव गांधी के अनशन ने रातो-रात कर दिखाया था।

गांधी, यद्यपि 1924 में ही भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के एक बार अध्यक्ष रहे थे, किन्तु कांग्रेस संगठन पर गांधी की पकड़ लम्बे समय तक बनी रही। इस शक्ति का आधार आम जनता से निरन्तर संवाद और सम्पर्क में रहने की गांधी की आदत और संत के रुप में निरन्तर स्थापित होते जा रहे गांधी की गरिमा थी। भारतीय स्वाधीनता आंदोलन के अंतिम पड़ाव पर जब ब्रिटेन ने भारतीयों की इच्छा के विरुद्ध भारत को युद्ध में झोक दिया और फासिस्ट शक्तियों के आक्रमण का भय भारत के दरवाजे पर आ खड़ा हुआ, गांधी को पुनः जन आंदोलन का अवसर दिया। इस समय स्थितियाँ भिन्न थी। मित्र राष्ट्रों के विजय के सन्दर्भ में विश्वास पूर्वक कुछ कहना कठिन था। साम्राज्य के व्यापक हितों को देखते हुए ब्रिटिश हुकूमत भारत के लिए ईमानदारी से रियायतों की घोषणा हेतु तत्पर न थी। देश में विपल्व जैसी स्थितियाँ उत्पन्न होती जा रही थी। ऐसी स्थिति भारत से यह विश्वव्यापी संदेश जाना जरूरी था कि वह किसी भी हिंसक शक्ति के साथ नहीं है। यह संदेश महात्मा गांधी के नेतृत्व में 1942 में भारत छोड़ो आंदोलन के माध्यम से दिया गया। इस आंदोलन की व्यापकता ने यह सिद्ध कर दिया कि भारत में अंग्रेजी शासन अब कुछ ही दिनों की बात है। किन्तु, स्वयं गांधी के लिए अब यह ऐसा काल था जहाँ उनके सहयोगी सत्ता के लोभ से अपने को संयमित नहीं रख सके। एक समय 'देश का विभाजन मेरी लाश' पर होगा कहने वाले गांधी ने विभाजन का प्रस्ताव रखा। यद्यपि विश्व के सर्वाधिक पीड़ादायी और हृदय विदारक देश विभाजन के बाद भी गांधी के अनेक समर्थकों का विश्वास था कि आगे चलकर स्वयं गांधी के प्रयत्नों से ही विभाजन का अन्त हो जायेगा। एक अखण्ड भारत पुनः अस्तित्व में आ जायेगा। किन्तु, 55 करोड़ रूपये जो भारत द्वारा पाकिस्तान को दिये जाने थे और जिसमें विलम्ब हो रहा था और जिसके लिए गांधी अनशन पर बैठने वाले थे, नाथू राम गोडसे ने गांधी को जनवरी 1948 में गोलियों का शिकार बना डाला।

गांधी के सभ्यता विमर्श को समझे बिना गांधी के कृत्यों एवं विचारों की परिपूर्णता स्पष्ट नहीं हो पाती है। दक्षिण अफ्रिका और भारत में उनका संघर्ष एवं व्यक्तिगत जीवन में ऊर्ध्वमुखी बनने के प्रयोग और इन प्रयोगों से अनुभूत सत्य का सामाजिक जीवन में स्थापना, गांधी के एक ही लक्ष्य को संकेतित करते हैं। गांधी का वह लक्ष्य है द्वेष, प्रतिस्पर्धा, भौतिक बल और भोगवृत्ति पर आधारित सभ्यता के स्थान पर प्रेम, सहयोग, आत्मबल और संयम की वृत्ति पर आधरित सभ्यता की स्थापना। उनकी लड़ाई भौतिक बल पर आधारित सभ्यता से है। दक्षिण अफ्रिका और भारत के संघर्ष इस दृष्टि से आनुषंगिक एवं प्रयोग स्थली है। आधुनिक सभ्यता की आलोचना रूसो, मार्क्स, एरिकफ्राम एवं हरबर्ट मारक्यूजे जैसे अनेक विचारकों ने किया है। गांधी की विलक्षणता इस बात में है कि वे आधुनिक सभ्यता के दोषों को जितने गहरे और विस्तृत परिप्रेक्ष्य में देखते हैं उतने ही गहरे एवं विस्तृत दृष्टिकोण से इन दोषों को दूर करने का उपाय भी बताते हैं। वैसे तो

गांधी का सम्पूर्ण जीवन ही मानव सभ्यता के लिये प्रथ प्रदर्शक है, किन्तु आधुनिक सभ्यता की मीमांसा की दृष्टि से उनके 'हिन्द स्वराज' नामक पुस्तिका का अद्वितीय स्थान है। यह पुस्तिका गांधी ने 1909 में इंग्लैण्ड से दक्षिण अफ्रिका जाते समय लिखी थी।

गांधी के अनुसार लोभ और तद्जनित भोगवृत्ति आधुनिक सभ्यता का मूल आधार है। औद्यौगीकरण ने इस मर्म को समझकर बड़े पैमाने पर उत्पादन के द्वारा लोभ और भोगवृत्ति को पुष्ट करने में प्रमुख योगदान दिया है। रेलगाड़ी, वायुयान और संचार के परिष्कृत साधन भी लोभवृत्ति के पोषक और संवाहक है। यहाँ तक कि पश्चिम का लोकतन्त्र जिसे गांधी फासिस्ट एवं नाजी चाल को ढकने का एक माध्यम मानते हैं, मूलतः भोगवृत्ति जनित सभ्यता को अक्षुण्ण बनाये रखने का तन्त्र है। गांधी के अनुसार आधुनिक सभ्यता के समर्थक मानव स्वभाव के मूल को समझाने में भूल करते हैं। वास्तव में मानव स्वभाव में प्रेम, दया, करूणा और सहयोग की ओर तिरष्कार, आक्रोश, हिंसा और प्रतिस्पर्धा की अपेक्षा स्वाभाविक आकर्षण है। ऐसी स्थिति में आज की सभ्यता और समाज में जो हिंसा, शोषण, प्रतिस्पर्धा और अन्याय विद्यमान है और जो निरन्तर बढता ही जा रहा है, मानव स्वभाव से उद्भूत न होकर उस व्यवस्था से उद्भूत है जिसने मनुष्य की मानवीय संवेदना को कैद कर लिया है। आधुनिक सभ्यता के सुसंगठित तन्त्र के माध्यम से जिस ज्ञान-विज्ञान का प्रचार-प्रसार हो रहा है वे प्रायः उस यंत्र, उद्योग एवं अर्थव्यवस्था के अनुगामी है जो छद्म मानव स्वभाव की भोगवादी वृत्ति को बढ़ाने में लगे हैं। फलतः आज अपशिक्षा को शिक्षा समझ लिया जा रहा हैं। आज की शिक्षा प्रणाली व्यक्ति के समक्ष जिस आदर्श को उपस्थित कर रहा है उसके प्रभाव में व्यक्ति अपने को प्रकृति का नियन्ता मानते हुए अहम् बोध से युक्त होकर कार्य करता है।

गांधी ने आधुनिक डाक्टरों एवं अधिवक्ताओं को भी आधुनिक सभ्यता के भोगवाद एवं संघर्ष को बढ़ाने में प्रमुख भागीदार माना है। प्राकृतिक चिकित्सा के समर्थक गांधी ने आधुनिक डाक्टरों को असंयमित जीवन का प्रेरक बताया है। वे कहते हैं कि आज के डाक्टर पथ्य नियंत्रण एवं आचार शुद्धता हेतु मरीज को प्रेरित नहीं करते हैं। फलतः मरीज पथ्य-कुपथ्य का ध्यान रखे बिना आचरण करता है और अस्वस्थ होता है। अस्वस्थता शरीर धर्म के पालन न करने का परिणाम है, यह एक दण्ड है। किन्तु डाक्टर बीच में आकर अपने कृत्रिम उपायों से शरीर को आराम पहुँचाता है। इससे व्यक्ति पुनः असंयमित आहार-विहार करता है और बीमार पड़ता है। डाक्टर यही तो चाहते है कि मरीज निरन्तर उनके पास आते रहें और उनकी कमाई दिनों-रात बढती रहे। आज के डाक्टर इस दृष्टि से भी व्यक्ति को भ्रष्ट बना रहे हैं कि उनकी दवाइओं में अनेक ऐसे अखाद्य पदार्थो का समावेश रहता है जो घृणास्पद होता है। अपने दवाइयों के परीक्षण हेतु अन्य जीवों को जिस प्रकार डाक्टर साधनवत अपनाते हैं, वह भी गैर मानवीय है।

डाक्टरों की ही भाँति वकीलों को भी गांधी ने उन दोषों का संवाहक माना है जो आधुनिक सभ्यता में गहरे स्तर तक विद्यमान हैं। वकील का स्वार्थ झगड़ा बढ़ाने में हैं। गांधी ने इस सन्दर्भ में यहाँ तक कहा कि यदि अंग्रेजी अदालतें न होती तो अंग्रेज लोग इस देश में शासन करने में सफल नहीं होते किन्तु वकीलों ने ही अंग्रेजी अदालतों को देश में कायम रखने में योगदान दिया है। यदि वकील वकालत छोड़ दें तो अंग्रेजी राज भारत में एक दिन में समाप्त हो जाय। वकील अपने मुवक्किल के बचाव में ऐसे-एसे तर्क गढ़ता है जिसकी परिकल्पना मुवक्किल ने भी नहीं की होती है। प्रतिस्पर्धा एवं हिंसा को बढ़ावा देने में वकीलों का महत्वपूर्ण योगदान है; क्योंकि हिंसा एवं प्रतिस्पर्धा जितनी बढ़ती है वकालत का पेशा भी उतना ही लाभोत्पादक बनता जाता है।

आधुनिक सभ्यता में अनेक विसंगतियों को केन्द्रीकृत उत्पादन प्रणाली और अधिशेष उत्पादन ने जन्म दिया हैं। केन्द्रीकृत उत्पादन प्रणाली के अनेक दोष हैं। एक तो यह असमान विकास को जन्म देती है और दूसरे वितरण की समस्या को उत्पन्न करती है। यदि आवश्यकता की वस्तु स्थानीय स्तर पर ही लोगों की आवश्यकताओं के अनुरूप बना लिये जाँय, तब न तो कालाबाजारी होगी न ही असंतुलित विकास की समस्या। अधिशेष उत्पादन के भी अनेक विसंगतियों को गांधी ने उजागर किया है। एक तो यह कि अधिशेष उत्पादन की खपत के लिये कृत्रिम मनोविज्ञान का निमार्ण आवश्यक हो जाता है। आज की शिक्षा एवं संचारतन्त्र अपनी शक्ति का बड़ा भाग इसी मनोविज्ञान के सृजन में लगाये हुए हैं। दूसरे, इस अधिशेष उत्पादन की खपत के लिए स्थानीय उत्पादन की इकाइयों को पंगु करना आवश्यक होता है। तृतीय, यह उपभोग की एकरूपता को जन्म देता है जिससे जीवन का वैविध्य समाप्त होने लगता है। अन्तिम यह कि अधिशेष उत्पादन उपनिवेशवाद और

साम्राज्यवाद को जन्म देता है। गांधी ने आधुनिक सभ्यता के केन्द्रीकृत उत्पादन प्रणाली और अधिशेष की खपत के लिए प्रतिस्पर्धा एवं भोगवाद को पर्यावरण असन्तुलन के कारण के रूप में भी देखा है।

आधुनिक सभ्यता की आलोचना के क्रम में गांधी ने यन्त्रों की दुनिया को बड़ी गम्भीरता के साथ उभारा है और उसके दोषों को दर्शाया है। गांधी के सन्दर्भ में, जब वे मशीनों की बात करते है कुछ तथ्य के प्रति सावधान होना अत्यन्त आवश्यक है। प्रथम, यह कि गांधी यन्त्रवाद के विरोधी हैं न कि यन्त्रों के क्योंकि वे इस शरीर को भी एक नाजुक मशीन की संज्ञा देते हैं और दन्तकुरेदनी को भी औजार कहते हैं। द्वितीय, गांधी यन्त्रों के प्रयोग का सम्पूर्ण रूप से उन्मूलन नहीं चाहते हैं बल्कि उनकी हदबन्दी करना चाहते हैं। तृतीय, गांधी सम्पूर्ण रूप से मनुष्य के श्रम को विस्थापित करने वाले मशीन को स्वीकार नहीं करते हैं। गांधी ने मशीनों का विरोध इस अर्थ में किया है कि यह भौतिक शक्ति के उपर मनुष्य की निर्भरता को बढ़ा देते हैं। मनुष्य की संवेदना एवं स्वतन्त्र निर्णय शक्ति को मशीन सीमित कर देते हैं। गांधी इस तथ्य के प्रति सचेत है कि चतुर्दिक मशीनों से घिरा हुआ मनुष्य अपनी चैतन्य शक्ति के सर्वोत्तम प्रयोग से वचिंत हो जाता है और ऐसा मनुष्य यान्त्रिक विवेक के समक्ष हथियार डाल देता है। शारीरिक श्रम की महत्ता को कम करके श्रम की प्रकृति के आधार पर मनुष्य जाति में विभेद की स्थापना भी यन्त्रों के बढ़ते प्रयोग की देन है। मशीनों की गांधी ने साप की बाम्बी से तुलना की है। इसका निहितार्थ यह है कि जैसे बाम्बी में एक के पीछे एक कई सांप लगे होते हैं उसी तरह एक मशीन दूसरे मशीन की आवश्यकता को उत्पन्न करती है। अतः एक बार जब मशीनों पर निर्भरता की आदत का जन्म होता है तब यह निरन्तर पनपता ही जाता है और इसका अन्त कहीं नहीं है। भारत की कंगाली और यहाँ के देशी उद्योगों को नष्ट करने में मशीनों की भूमिका को भी गांधी ने उजागर किया है। मशीन को गांधी ने आत्मशक्ति का नाश करने वाला माध्यम कहा है।

गांधी ने आधुनिक सभ्यता के दोषों का जिस समग्रता से निरूपण किया है, वैसी ही समग्रता और गहनता से इसके दोषों को दूर करने और सच्ची मानवता के पोषक सभ्यता के निर्माण हेतु दिशा निर्देश भी दिये हैं। इसके लिए गांधी मातृभाषा में दी जाने वाली शिक्षा को महत्वपूर्ण मानते हैं। इसी के चलते भारत के लिए 'हिन्दुस्तानी' के रूप में एक राष्ट्रभाषा की अपेक्षा गांधी को है। उनके अनुसार ज्ञान विविध शास्त्रों में उपलब्ध विषयों में पारंगत होना नहीं है। जिससे शरीर 'वश में रहे और बुद्धि शुद्ध शान्त और न्यायदर्शी बने गांधी ने उसी को शिक्षा कहा है। गांधी ने दूसरों को अपने जैसा मानने को ही सच्चे अर्थ में शिक्षित होना कहा है। इस तरह की शिक्षा, स्वदेशी, ग्रामों की आत्मनिर्भरता, आत्मानुशासन, के द्वारा राज्यरूपी हिंसक संस्था का विस्थापन, शारीरिक श्रम के महत्ता की स्थापना न्यासिता का विचार इत्यादि वे मूल सूत्र हैं जिस पर गांधी के रामराज्य का स्वप्न आधारित है। वस्तुतः गांधी का रामराज एक मानवीय सभ्यता का विकल्प है।

यदि भारतीय स्वाधीनता संग्राम गांधी के नेतृत्व में सत्य एवं अहिंसा से ओत-प्रोत होने के कारण सम्पूर्ण विश्व के इतिहास में अपना अद्वितीय स्थान रखता है, तो उसका एक महत्वपूर्ण पक्ष सत्याग्रह के संघर्ष में स्त्रियों का योगदान भी रहा है। यह गांधी की दूरदृष्टि ही थी जिसने यह माना कि सदियो से राष्ट्र की आधी आबादी जिसे 'अबला' कहा जाता रहा है, को जबतक 'सबला' नहीं बनाया जायेगा तब तक स्वराज का निहितार्थ सिद्ध नहीं होगा। गांधी स्वराज की डोर स्त्रियों के हाथ मे देना चाहते थे क्योंकि वे स्त्री शक्ति के प्रति पूर्णतः आश्वस्त थे। वे कहते थे यदि शक्ति का मतलब केवल पशु बल ही होता है तो बेशक स्त्रियों में पशु बल कम है। किन्तु, यदि उसका अर्थ नैतिक शक्ति होता है तो स्त्रियों की शक्ति से पुरूषों की शक्ति की कोई तुलना नहीं की जा सकती। गांधी ने माना की स्त्रियों का भी एक अलग व्यक्तित्व है एवं इस व्यक्तित्व की भी अपनी एक गरिमा है। समाज के उत्थान में यदि इस व्यक्तित्व को स्थान नहीं मिलता तो किसी भी प्रकार का विकास मात्र आंशिक ही होगा।

गांधी स्वराज की अहिंसक लड़ाई में स्त्रियों का अहवान करते हैं तथा कहते हैं कि अहिंसक संघर्ष में स्त्रियाँ पुरुषों से अधिक भाग ले सकती हैं क्योंकि स्त्रियाँ त्याग की, दया की और इसीलिए अहिंसा की मूर्ति हैं। जहाँ पुरुष अहिंसा धर्म को केवल बुद्धि से ही समझते हैं, वहाँ स्त्रियों के लिए यह एक ऐसी वस्तु है जिसे वे जन्म से ही जानती हैं। पुरूष तो थोड़ी जिम्मेदारी उठाकर ही अपने आप को कृत कार्य मान लेता है, परन्तु बहनों को तो पति की, बालकों की तथा परिवार के अन्य सभी सदस्यों की सेवा करनी पड़ी है। पारिवारिक उत्तरदायित्वों का यही निर्वहन स्त्रियों में प्रकृति प्रदत्त सेवा भाव संबंधी गुणों का उत्तरोत्तर विकास करता है तथा वे हृदय-परिर्वतन संबंधी अहिंसक युद्ध के अंतिम ध्येय को सहज ही प्राप्त कर लेती है।

चूँकि सत्याग्रह का मर्म कष्ट सहने में है और स्त्रियों को तो कष्ट सहन की अदम्य शक्ति प्रकृति से ही प्राप्त है, अतः यदि वे स्वयं की शक्ति को पहचान ले अथवा स्वयं को पुरूषों की दासता से मुक्त कर ले तो राष्ट्र की ही नही वरन् विश्व-शांति की स्थापना में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकती है। गांधी के इसी आह्वान पर लाखों स्त्रियों ने अहिंसात्मक सत्याग्रह की कमान संभाली तथा यथायोग्य अंशदान दिया। गांधी का अभिप्राय कभी भी स्त्रियों द्वारा पुरूषों की नकल करना अथवा दोनों में पाये जाने वाले स्वभावगत अन्तर को अनदेखा कर देना नहीं था। गांधी स्त्री एवं पुरूष को एक दूसरे का पूरक, साथी व सहारा मानते हैं। साथ ही यह भी स्वीकारते हैं कि आत्मिक रूप से एक होते हुए भी दोनों में प्रकृतिगत विभेद है और यही विभेद उनके व्यवसाय को व समाज के प्रति उनकी भूमिका की विभिन्नता को दर्शाता है।

जहाँ आधुनिक नारीवादी विचारकों की लड़ाई समानता के प्रश्न को लेकर है, वहीं गांधी की दृष्टि में स्त्री-पुरूष के बीच कार्यो का विभेदीकरण किसी भेदभाव की भावना से परिपोषित नहीं है। उसका ध्येय समाज के सभी वर्गो को उनकी प्रकृति के अनुसार यथोचित स्थान देना है। गांधी स्त्री व पुरूष के कार्य-क्षेत्रों को अलग-अलग न करके पूरक बनाने का प्रयास करते हैं। वास्तविक धरातल पर स्त्री व पुरूष दोनों का उद्देश्य राष्ट्र, समाज व मानवता की सेवा करना है। कभी-कभी गांधी-दर्शन तो स्त्रियोचित गुणों को पुरूषोचित गुणों से भी ऊपर रखता है। परन्तु, आधुनिक नारीवादियों का गांधी पर आक्षेप हैं कि गांधी ने स्त्रियों को घरेलू कार्यो से बाधंकर उनकी महत्ता कम कर दी है। गांधी यदि महिलाओं को घर के भीतर कार्यो से जोड़ते हैं तो उनका अभिप्राय किसी भी कार्य को कम करके आंकना नहीं है। चूँकि स्त्रियों में सृजन व संरक्षण जैसे प्रकृति जन्य गुण सहज ही पाये जाते हैं, वे गृहकार्यों को अपेक्षाकृत अधिक दक्षता से कर सकती हैं। साथ-ही गांधी यह भी स्वीकारते हैं कि यदि कोई स्त्री पुरूषों के समान ही वाहय कार्य को आतुर हो तो इनमें कोई परेशानी नहीं होनी चाहिये। वस्तुतः गांधी का उद्देश्य विसंगत सामाजिक संरचनाओं को खण्डित करके सत्य एवं अहिंसा पर आधारित ऐसे समाज को निर्मित करना है जिसकी नींव प्रेम, सहयोग व साहचर्य की भावना पर निर्मित हो, न कि द्वेष, स्पर्धा व घृणा पर।

गांधी के विचार एवं उनके कर्म उनके जीवन काल से ही विमर्श एवं विवाद के विषय बन गए हैं। आधुनिक सभ्यता की मीमांसा करते हुए लिखी गयी 'हिन्द स्वराज' को तो उनके राजनीतिक गुरु गोपाल कृष्ण गोखले ने ही खारिज कर दिया था। भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम में किसानों एवं मजदूरों को जितने व्यापक पैमाने पर उप-निवेशवाद विरोधी और सामन्तवाद विरोधी आंदोलन के साथ-साथ चलाया जाना था, वह यदि सम्भव नहीं हो सका तो गांधी ही इसके कारण माने जाते हैं। भारत में जातिवाद का मूलोच्छेद न हो सका तो भी गांधी के आग्रहों को इस हेतु उत्तरदायी बताया जाता है। यह भी आक्षेप लगाया जाता है कि गांधी रूपी वट वृक्ष ने भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन में अनेक जन नायकों के राजनीतिक जीवन की आहूति ले ली। ऐसी आलोचनाओं की पराकाष्ठा यह है कि जिन्ना और गांधी के मतभेद को जिन्ना में कट्टरपंथ के बीज बोने हेतु उत्तरदायी माना जाता है।

भारत में क्रान्तिकारी आन्दोलन की धारा को कुन्द करने में भी गांधी के अहिंसावादी नीति को उत्तरदायी बताया जाता है। इस सन्दर्भ में एक प्रबल तर्क यह भी दिया जाता है कि जिस गांधी ने अब्दुल रशीद को मृत्यु दण्ड से बचाने हेतु प्रस्ताव किया उसी गांधी ने सरदार भगत सिंह को बचाने के लिए प्रयत्न क्यों नहीं किया। प्रथम विश्व युद्ध के काल में ब्रिटिश सेना में भारतीयों की भर्ती हेतु गांधी के प्रयत्न की इस दृष्टि से आलोचना की जाती है कि जब यह एक साम्राज्यवादी युद्ध था तब गांधी ने सत्य एंव अहिंसा की किस परिभाषा के आधार पर युद्ध प्रयत्नों का समर्थन किया। गांधी द्वारा विभिन्न स्त्रियों के साथ ब्रह्मचर्य के परीक्षण हेतु किए गए प्रयोग ने भी उन्हें सदैव आलोचना के केन्द्र में रखा है। इस संदर्भ में नारीवादियों की आलोचना यह है कि गांधी के इस प्रसंग ने स्त्रियों को आत्मतत्व से नीचे उतारकर महज देह तक सीमित कर दिया है। क्योंकि, गांधी ने अपने ब्रह्मचर्य साधना के परीक्षण के लिए स्त्री को साधन बना दिया। गांधी के जीवन का यह पक्ष नैतिक आचरण और सामाजिक मर्यादा की दृष्टि से भी आलोचना का शिकार हुआ है। लोकेषणा की सिद्धि में निरत व्यक्ति को जिसका लोक अनुसरण करता हो श्रीमद्भागवतगीता भी उसे श्रेष्ठ कर्मों के सम्पादन का ही संदेश देती है।

हरिपुरा अधिवेशन में सुभाष चन्द्र बोष की लोकप्रियता को देखते हुए जब तत्कालीन दिग्गज कांग्रेसी नेताओं ने अध्यक्ष पद हेतु सुभाष बाबू के विरुद्ध नामांकन नहीं किया तब भी गांधी द्वारा पट्टाभिसीता रमैया को उम्मीदवार बनाना तथा पट्टाभिसीता रमैया के हार को अपनी हार मानना, गांधी में कुछ पूर्वाग्रहों का संकेत देता है। सुभाष बाबू की कार्यकारिणी में

अपने सदस्यों को नामित करने हेतु पहल करना, पं0 जवाहर लाल नेहरु के प्रति विशेष अनुरक्ति का भाव होना, कस्तूरबा गांधी के प्रति मानसिक हिंसा के संज्ञेय सीमा को पार कर जाना आदि ऐसे उदाहरण है जहाँ गांधी के दिव्य प्रसंग धूमिल से हो जाते हैं।

ऐसी ही अनेक आलोचनाओं के होते हुए भी गांधी को मानव जाति के इतिहास का सबसे बड़ा क्रान्तिकारी भी बताया जाता है। इस संदर्भ में यह तर्क दिया जाता है कि कार्ल मार्क्स ने जहाँ व्यवस्था परिवर्तन पर बल दिया था गांधी ने व्यवस्था परिवर्तन हेतु व्यवस्था के मूल में स्थित व्यक्ति के परिवर्तन की बात कही है। सोवियत संघ के विघटन ने अन्ततः गांधी के ही उस विचार को पुष्ट किया है जहाँ गांधी यह कहते हैं कि 'शक्ति के द्वारा स्थापित कोई भी व्यवस्था उससे बड़ी शक्ति द्वारा बदल दी जाती है।' मानवजाति के इतिहास में जीवित ही किम्वदन्ति बन चुके गांधी को आज सर्वत्र शोषित मानवता की रक्षा के लिए गतिमान आंदोलनों में सत्याग्रह तथा सविनय अवज्ञा के विभिन्न रुपो में उपस्थित देखा जाता है।

अधिकारों की प्राप्ति और उनकी रक्षा, व्यक्तिगत अधिकारों के बाद अब समूह अधिकार और क्षेत्रगत अधिकार, मानव अधिकारों में भी जाति एवं विचारधारा जनित विद्वेष आज के जटिल समाज के यथार्थ बन चुके हैं। अधिकारों एवं प्रति अधिकारों की माँग और उनकी रक्षा से सभ्य समाज की स्थापना संभव नहीं है। इसके लिए तो कर्तव्य पालन की महत्ता पर बल देना आवश्यक है। गांधी के कर्तव्य परायणता का सूत्र आज भी उतना ही प्रासंगिक है जितना तब था। एच0 जी0 वैल्स ने संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकारों की घोषणा पत्र की रुप रेखा तैयार करने के क्रम में गांधी से अधिकारों की वरेण्य सूची मांगी थी। तब गांधी ने अपने पत्र में वेल्स को लिखा था कि उनकी नजर में अधिकारों का स्थान नहीं है। हाँ, वे उत्तरदायित्वों की सूची अवश्य बना सकते हैं। गांधी की दृष्टि में कर्तव्यों के निष्पादन की जो योजना है वह एक के सहयोगी होते हुए दूसरे के अधिकारों को प्रत्याभूति करने की स्वतः स्फूर्त योजना पर आधारित है। इससे अधिकारों की प्रत्याभूत बाह्य बल द्वारा नहीं होती है बल्कि यह सहयोगात्मक वृत्ति द्वारा संभव होती है।

पर्यावरण प्रदूषण से उत्पन्न समस्याओं ने जिस प्रकार मानवजाति पर संयमित उपभोग एवं जीवन शैली में बदलाव हेतु दबाव डाला है, वह भी गांधी मार्ग की ग्राह्यता को बड़े पैमाने पर बढ़ा दिया है। असंयमित उपभोग की हदबंदी जिस तरह गांधी ने की है आज वह पर्यावरणवादियों के बीच एक प्रतिमान के रुप में विकसित हुआ है।

मानव जाति के लिए समग्र रूप से विचार करने पर गांधी मार्ग एक मुक्तिपथ सदृश प्रतीति देता है। आज की समस्याओं का टुकड़े-टुकड़े में समाधान करने की प्रवृत्ति अन्ततः हताशा और विफलता को ही सामने लाती है। आज की समस्याओं का समग्रता में निदान आवश्यक बनता जा रहा है। सम्पूर्ण मानव जीवन और मानवता पर जितनी समग्रता से गांधी दृष्टि प्रकाश डालता है, कदाचित वैसी समग्र दृष्टि कम ही उपलब्ध होते हैं।

सन्दर्भ

जैनेद्र कुमार (1985) -*अकालपुरूष गांधी,* पूर्वोदय प्रकाशन, नई दिल्ली।

रामजी सिंह(1986) -*गांधी दर्शन मीमांसा,* बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना।

महात्मा गांधी (1981) -*आत्मकथा : सत्य के साथ मेरे प्रयोग,* सस्ता साहित्य मण्डल प्रकासन, नई दिल्ली।

सम्पूर्ण गांधी वाङ्मय (1961-1980), सूचना और प्रसारण मत्रांलय, नई दिल्ली।

महात्मा गांधी (1982) -*हिन्द स्वराज,* नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबद।

महात्मा गांधी (1959) -*स्त्रियाँ और उनके कार्य,* नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबद।

महात्मा गांधी (1983) -*मेरे सपनों का भारत,* नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबद।

महात्मा गांधी (1959) -*विश्व शान्ति का अहिंसक मार्ग,* नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबद।

महात्मा गांधी (1950) -*गीता माता,* सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, नई दिल्ली।

लुई फिशर (2006) -*गांधी की कहानी,* सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,87-88**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 14 मार्च 2014

उदारीकरण के संदर्भ में राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का प्रभाव

डॉ. मनोज कुमार राय*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *उदारीकरण के संदर्भ में राष्ट्रीय एवं क्षेत्रीय राजनीतिक दलों का प्रभाव* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *मनोज कुमार राय* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में राजनीतिक दलों को दो दर्जे में विभाजित किया जाता है। पहले दर्जे के अन्तर्गत राष्ट्रीय दल तो दूसरे दर्जे के रूप में क्षेत्रीय दल आते हैं। किसी भी दल को चुनाव में भाग लेने के लिये आवश्यक है कि भारत के निर्वाचन आयोग में पंजीकृत दल के रूप में हो।

राष्ट्रीय दल वे दल होते हैं जो चार या इससे अधिक राज्यों में जाने जाते हों अथवा इस शर्त की पूर्ति न कर पाने पर वे क्षेत्रीय दल माने जायेंगे। भारतीय राष्ट्रीय राजनीति में राष्ट्रीय दल के रूप में निर्वाचन आयोग में पंजीकृत पार्टी के रूप में कुल छः दल हैं जिन्हें हम बी0एस0पी0, बी0जे0पी0, एन0सी0पी0, आई0एन0सी0, सी0पी0आई0, सी0पी0आई(एम0) के रूप में जानते हैं। जहाँ तक रही बात क्षेत्रीय दलों की है तो विकीपीडिया के अनुसार कुल 47 दल क्षेत्रीय दल हैं।

क्षेत्रीय दलों की विशेषता उनके विशेष क्षेत्र की इच्छा, आकांक्षा, भौगोलिक बनावट, जातीयता और महत्वाकांक्षा पर निर्भर है। भारत के राजनीति में कुछ क्षेत्रीय दल इस प्रकार से संगठित और सुदृढ़ है जो कि राष्ट्रीय राजनीति को अपने अनुसार प्रभावित करते हैं। चूँकि यह लेख मुख्यरूप से क्षेत्रीय दलों के राजनैतिक स्थिति को रूपांकित करता है इसलिये हम कुछ ऐसे क्षेत्रीय दलों के नामों का जिक्र अवश्य करेंगे।

क्षेत्रीय दलों के रूप में पंजीकृत दलों में जो प्रमुखता से जाने जाते हैं, वे हैं- 1. समाजवादी पार्टी, 2. जनता दल (युनाइटेड), 3. तृणमूल कांग्रेस, 4. आम आदमी पार्टी, 5. ए0आई0ए0डी0एम0के0, 6. बीजू जनता दल, 7. डी0एम0के0, 8. असम गण परिषद्, 9. भारतीय राष्ट्रीय लोकदल, 10. जम्मू कश्मीर डेमोक्रेटिव पार्टी, 11. झारखण्ड मुक्ति मोर्चा, 12. झारखण्ड विकास मोर्चा, 13. जनता दल सक्यूलर, 14. राष्ट्रीय जनतादल, 15. लोकजनशक्ति पार्टी, 16. राष्ट्रीय लोकदल, 17. शिरोमणि अकाली दल, 18. तेलगू देशम पार्टी, 19. मीजो नेशनल फ्रंट, 20. नेशनल कांफ्रेंस आदि हैं।

* प्राचार्य, स्वामी विवेकानन्द इण्टर कॉलेज [महुजा, पकड़ी दूबे] गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

उपरोक्त क्षेत्रीय दलों के नामों का जिक्र इसलिये किया जा रहा है क्योंकि उपरोक्त दलों की अपने राज्यों में या तो सरकारें हैं या रही हैं। उपरोक्त दलों ने अपने सम्बन्धित राज्य में राष्ट्रीय दलों को विस्थापित कर के वहाँ की सत्ता को अपने कब्जे में ले लिया है।

लोकतंत्र में सभी दलों का एक मात्र उद्देश्य यह होता है कि वे अपने जनाधार का किस प्रकार से परिवर्धन, परिमार्जन एवं विकास कर सकते हैं। चूँकि भारतीय गणतंत्र में सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, विषमता विद्यमान है। इसलिये राष्ट्रीय पार्टियों द्वारा राष्ट्रीय स्तर पर लागू की जाने वाली नीतियों से समस्त नागरिकों पर पड़ने वाले प्रभावों को कम करके आंका जा सकता है।

उदारीकरण के परिप्रेक्ष्य में

चूँकि राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों के प्रभावों का आकलन करना प्रस्तुत लेख का प्रधान विषय है इसलिये इस विषय वस्तु को दृढ़ करने के लिये भारतीय राजनीति के इतिहास में आपातकाल और उसके बाद के बदलाओं पर चर्चा करना आवश्यक है। आपातकाल और उसके बाद राजीव गांधी के द्वारा लागू किये जाने वाले आर्थिक सुधारों की पृष्ठभूमि में इन क्षेत्रीय दलों के उभार को विशेष रूप से देखा जा सकता है। भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा केन्द्र में बनाई जाने वाली सरकार को सर्वप्रथम यदि किसी पार्टी में विस्थापित करने का जिम्मा जिस *जनता पार्टी* ने उठाया था वास्तविक आधार क्षेत्रीय ही था। नब्बे के दशक में जब श्री नरसिंह राव की सरकार ने उदारीकरण की गति को तीव्र किया तो क्षेत्रीय दलों की शक्ति क्षमता और सामर्थ्य में और अधिक वृद्धि हुई।

इसको हम इस प्रकार से देख सकते हैं कि उदारीकरण के परिणाम स्वरूप वाह्य मितव्ययिताओं से देश की सकल राष्ट्रीय आय में तीव्र वृद्धि हुई। चूँकि आय राष्ट्रीय थी इसलिये इनपर अधिकार की जंग शुरू हो गई।

वितरण के सिद्धान्तों में त्रुटि होने के कारण आय का बटवारा, दलितों, शोषितों, वंचितों, पिछड़ों, अल्पसंख्यकों, भाषायी अल्पसंख्यकों आदि में समरूप न होने से ये क्षेत्रीय दल उदित हुये। चूँकि राष्ट्रीय विकास में इनका योगदान अप्रतिम रहा है इसलिये इस योगदान के पुरस्कार को प्राप्त करने के लिये इनको एक मंच की अवश्यकता थी जिसे क्षेत्रीय दलों ने प्रदान किया।

आज भारतीय राजनीति के पिछले तीस वर्षों के इतिहास को देखें तो यह स्पष्ट होता है कि राष्ट्रीय राजनीति में क्षेत्रीय दलों के सहयोग के बिना कोई भी सरकार अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर सकी है। चूँकि उदारीकरण ने विविधताओं को जन्म दिया है, इसलिये यह कहना गलत नहीं होगा कि राष्ट्रीय राजनीति के बिना क्षेत्रीय दलों के योगदान के स्थायित्व को प्राप्त कर पाना असम्भव होगा।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,93-94**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 19 अप्रैल 2014

गुप्तकालीन साहित्यिक स्त्रोत

रितु यादव*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *गुप्तकालीन साहित्यिक स्त्रोत* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *रितु यादव* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

गुप्त युग भारतीय इतिहास का स्वर्णयुग माना जाता है। इस राजकुल के नरेशों ने अदम्य उत्साह, संगठन, प्रतिमा तथा साम्राज्यवादि नीति द्वारा एक ऐसे सुविशाल साम्राज्य का निर्माण किया, जो अपने उत्कर्ष-काल में पश्चिम में गुजरात से लेकर पूर्व में बंगाल तक प्रसारित था। कला, साहित्य एवं राष्ट्रीय जीवन के अन्य विविध क्षेत्रों में गुप्तकालीन विकासों से प्रभावित होने के कारण इस समृद्ध युग एवं राजवंश के इतिहास निमार्ण के लिए प्रचुर साधन उपलब्ध हैं।

अधिकांश विद्वानों ने कालिदास को गुप्तकालीन कवि माना है। उन्होंने 'मालविकाग्निमित्रम्' जैसा ग्रंथ तो लिखा, जिसमें पुष्यमित्र के यवन-युद्ध एवं अश्वमेघ यज्ञ का वर्णन प्राप्त है। साहित्यिक साधनों में सर्वप्रथम पुराण उल्लेखनीय हैं। भविष्यवाणी की शैली में लिखित पुराणों को इतिहासकारों ने पहले अनैतिहासिक मानते हुए अस्वीकार कर दिया था, परंतु अब इनकी प्रामाणिकता पर किसी को कोई संदेह नहीं है। पुराणों के अनुसार उसका 5वां लक्षण 'वंशानुचारिता' हुआ करता था। गुप्तवंश की इतिहास की संरचना को दृष्टि से विष्णु पुराण, वायु पुराण तथा ब्रह्माण्ड पुराण निश्चित रूप से उपयोगी प्रमाणित हुए हैं। इनके द्वारा गुप्तों की इतिहास एवं उनकी राज्य सीमा के बारे में उपयोगी सिद्ध होती है, तथा इनकी समाज एवं संस्कृति के विभिन्न पक्षों पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

गुप्तवंशीय इतिहास के परिचय निमित्त 'देवीचन्द्रगुप्त' नामक संस्कृत नाटक भी उपयोगी सिद्ध हुआ है। इसके रचयिता सुप्रसिद्ध नाटककार विशाखदत्त थे, जिन्हें मुद्रराक्षस की भी रचना का श्रेय प्रदान किया जाता है। इसके कतिपय अंश उद्धरण रूप में भोज-प्रणीत श्रृंगार-प्रकाश तथा गुणचंद्र एवं रामचन्द्र द्वारा विरचित नामक ग्रंथ में उपलब्ध हुए हैं, जिससे इनकी प्रतिष्ठा अभिव्यक्त हो जाती है। इस ग्रंथ का नाटक प्रतिभा-सम्पन्न गुप्तवंशीय सम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय रहा होगा। देवीचन्द्रगुप्तम् के प्राप्त उद्धरणों में उसके द्वारा अपने बड़े भाई रामगुप्त का वध तथा उसकी भार्या ध्रुवस्वामिनी के साथ उसका विवाह एवं उसके राज्याभिषेक होने का उल्लेख प्राप्त होता है।

* एम. ए., प्राचीन इतिहास विभाग, राजर्षि टण्डन ओपेन यूनिवर्सिटी इलाहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

अधिकांश विद्वानों ने कविवर कालिदास को गुप्तकाल की ही विभूति माना है। उन्होंने ऋतुसंहार, कुमारसंभव, मेघदूत, रघुवंश, मालविकाग्निमित्रम्, विक्रमोर्वशीयम् तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् आदि उत्कृष्ट ग्रंथों की रचना की थी। शैली एवं वर्ण विषयों के आधार पर ऋतुसंहार उनकी प्रथम रचना मानी जाती है। इन ग्रंथों में उन्होंने विभिन्न ऋतुओं का परिचय, नाना अलंकार, सुगन्धित द्रव तथा सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन से संबधित महत्वपूर्ण सामग्री प्राप्त हुई है। कई विद्वानों का अनुमान है कि कुमारसंभव की रचना उन्होंने कुमारगुप्त प्रथम के जन्म के अवसर पर की थी। मेघदूत संस्कृत-साहित्य का सर्वोत्तम् गीति काव्य है। इसमें गुप्तकालीन नगर उज्जयिनी के ठाठबाट, महाकाल के मंदिर एवं उसके वातावरण का सजीव चित्र शैली के आधार पर रघुवंश तथा अभिज्ञानशाकुन्तलम् उनके जीवन की अन्तिम दिनों की कृतियॉ ज्ञात होती है। रघुवंश में प्रजा-रक्षक सम्राट के गुणों का उल्लेख मिलता है। अभिज्ञानशाकुन्तलम् में राजत्व के आदर्श, मनोविवाद के साधन, लोकप्रिय त्योहार, आभूषण वाहन तथा चित्रकला की सामग्री आदि के विषय में उल्लेख प्राप्त है।

यदि तत्कालीन नगर एवं ग्राम- जीवन भेद की जानकारी प्राप्त करनी हो तो कालिदास के ग्रंथों को पढ़ना चाहिए। 'मालविकाग्निमित्रम्' नामक नाटक में ग्राम नगर भेद के विषय में बहुत अच्छा उल्लेख प्राप्त होता है।

इस ग्रंथ में जन-जीवन की बॉकी-झॉकी उपलब्ध होती है। इस ग्रंथ का नायक चारूदत्त था, जिसके व्यक्तित्व में गुप्तकालीन आदर्श नागरिक के वांछनीय गुणों का सजीव चित्रण मिलता है। लेखक के शब्द में वह दिनों के लिए करूणा रूपी फलों से नम्र सज्जनों के लिए स्वजनतुल्य, शिक्षितों का आदर्श, परोपकारी, किसी का अपमान न करने वाला, सद्गुणों का केन्द्र, कुशल, अंधों के लिए दृष्टि की भांति तथा रोगों के लिए शक्ति के तुल्य था। इस ग्रंथ में तत्कालीन नगर शासन पद्धति के विषय में भी उल्लेख मिलात है। उज्जयिनी के न्यायालय का इसमें जो वर्णन उपलब्ध होता है, वह गुप्तकालीन् पुर-न्यायालयों की कार्यपद्धति पर प्रकाश पड़ता है।

वात्स्यायन के सुप्रसिद्ध ग्रंथ कामसूत्र को भी लोग गुप्तकालीन रचना मानते है। इसमें एक श्रृंगारप्रेमी नागरिक की जीवनचर्या एवं उसके कला-प्रेम का यथातथ्य वर्णन उपलब्ध होता है। इस ग्रंथ में पुरूष एवं स्त्री समाज में प्रचलित वेशभूषा, आभूषण, सुगंधित द्रव वाटिका, सरोवर, वाद्य एवं संगीत तथा नागरिकों के मनोविनोद के संबंध में रोचक सामग्री उपलब्ध होती है। प्राचीन भारतीय पुर एवं पुर-जीवन की प्रमाणिक जानकारी का यह ग्रंथ अत्यंत लाभदायक सिद्ध हुआ है।

फाह्यिान उन चीनी यात्रियों की परंपरा में आता है, जो बुद्ध ग्रन्थ का अनुशीलन तथा इस धर्म से संबंधित तीर्थों का पर्यटन करने हेतु भारतवर्ष आए थे। वह गुप्त काल में ही भारत आये थे। अतएव इस वंश के निमित्त उसका विवरण उपयोगी सिद्ध हुआ है। उसने पश्चिम से पुष्कलावती से लेकर पूर्व में ताम्रलिपि तक विभिन्न ऐतिहासिक केन्द्रों में रूककर स्थानीय प्रथाओं, धार्मिक विश्वास एवं प्रचलन, जलवायु, वनस्पतियों तथा जनस्वभाव का मनोहारी वर्णन प्रस्तुत किया है। उसने भारतीय नागरिकों की दान परायणता तथा अतिथि-सत्कार की अति प्रशंसा की है। उसके अनुसार इस देश के निवासी सुखी और सम्पन्न थे एवं उनका चरित्र उच्चकोटि का था। कहीं भी चोरी का भय नहीं था। अतएव लोगों को अपने घरों में ताला तक लगाने की आवश्यकता नहीं पड़ती थी। दण्ड विधान साधारण सा था। नगरों में चिकित्सालय तथा दान ग्रह बने हुये थे। जहॉ पर असहाय व्यक्तियों को भोजन वस्त्र एवं औषधि निःशुल्क मिलती थी। उनसे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य की राजधानी एवं उसके राजप्रसाद का मार्मिक चित्र खींचा है।

भारतवर्ष आने वाले चीनी यात्रियों में ह्वेनसांग सबसे प्रधान माना जाता है। वह हर्ष के समय में यहॉ आया हुआ था, अतएव उसका यात्रा विवरण प्रधानतः वर्द्धनकालीन इतिहास के ही उपयोगी है, पर इसमें प्रसंगतः गुप्तकाल से संबधित उल्लेख भी प्राप्त होता हैं। उसके अनुसार नालंदा के विश्वविधालय का संस्थापक शक्रादित्य नामक गुप्त नरेश था। बहुत से लोग शक्रादित्य तथा कुमारगुप्त प्रथम को एक ही व्यक्ति मानते थे। उसने बुद्धगुप्त तथा बालादित्य तथा बज्र आदि गुप्त नरेश का भी उल्लेख किया है। ह्वेनसांग के अनुसार बालादित्य हूणों का विजेता था। उसने एक गुप्तकालीन ऐतिहासिक स्थानों का वर्णन किया है जिसमें से कुछ का पूर्वकालीन वैभव उसके आगमन के समय नष्ट हो चुका था, परंतु उनमें से कतिपय अपने प्राचीन ऐश्वर्य को अब संजोये हुए थे।

सहायक ग्रंथ

अष्टादश पुराण, कालिदास समग्र, वात्स्यायन -*कामसूत्र,* विशाखदत्त -*देवीचन्द्रगुप्त*

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,95-98**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 अप्रैल 2014

मानव व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में संगीत का योगदान

सुमिता बनर्जी*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मानव व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में संगीत का योगदान* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र की लेखिका मैं *सुमिता बनर्जी* घोषणा करती हूँ कि लेखिका के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेती हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देती हूँ। यह लेख / शोध प्रपत्र मूल रूप में या इसका कोई अंश कहीं और नहीं छपा है और न ही कहीं मैंने इसे छपने के लिए भेजा है। यह मेरी मौलिक कृति है। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देती हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देती हूँ।

ईश्वर द्वारा निर्मित इस सृष्टि की महानतम रचना है मनुष्य। इस सृष्टि में मनुष्य सभी प्रकार के जीवों अण्डज (पक्षी), पिण्डज (मनुष्य), ऊष्मज (जो ऊष्मा से उत्पन्न हो) तथा स्थावर (वृक्ष इत्यादि) में सबसे बुद्धिमान, विवेकवान है अर्थात् उसमें अच्छे-बुरे सही-गलत, नीति-अनीति में निहित महत्ता को समझने का विवेक है। अतः मानव में समाहित मानवीय गुणों से ही उसके व्यक्तित्व का आभास होता है।

''व्यक्तित्व शब्द अपने आप में व्यापक एवं विस्तृत है। व्यक्तित्व का अंग्रेजी रूपांतरण पर्सनैलिटी (Personality) है जो लैटिन भाषा के 'परसोना' (Persona) शब्द से बना है। 'परसोना' का अर्थ है- 'नकाब' जिसे नायक या नायिका नाटक करते समय मुँह पर लगा लेते हैं।''[1]

इस शाब्दिक अर्थ को ध्यान में रखते हुए व्यक्तित्व को बाहरी वेशभूषा या दिखावा के आधार पर परिभाषित किया गया है। वास्तव में व्यक्तित्व मानवीय मूल्य का प्रतिमान है जो किसी परिस्थिति विशेष के प्रत्युत्तर में किये जाते हैं और जो परिस्थिति के अनुसार परिवर्तित होते रहते हैं तथा जिसका उस परिस्थिति विशेष से अलग कोई अस्तित्व नहीं होता। इसी कारण ही एक व्यक्ति किसी परिस्थिति में अधिक ईमानदार और समयनिष्ठ होता है तो वही दूसरी परिस्थिति में ठीक इसके विपरीत।

इस प्रकार कुछ वैज्ञानिकों ने व्यक्तित्व को शारीरिक गुणों का योग तो कुछ ने मानसिक गुणों का योग बतलाया है। 'व्यक्तित्व' शब्द को स्पष्ट करने के लिए विभिन्न विद्वानों ने उसकी मनोवैज्ञानिक ढंग से निम्नलिखित परिभाषाएं दी हैं- एच.सी. वारेन के अनुसार, ''व्यक्तित्व व्यक्ति का सम्पूर्ण मानसिक संगठन है जो उसके विकास की किसी भी अवस्था से होता है।''[2] रेक्स रॉक के अनुसार, ''व्यक्तित्व समाज द्वारा मान्य तथा अमान्य गुणों का संतुलन है।''[3] जे.ई. डेशील के अनुसार, ''व्यक्ति का व्यक्तित्व सम्पूर्ण रूप से उसकी प्रतिक्रियाओं की और प्रतिक्रियाओं के आवश्यकताओं की उस ढंग की व्यवस्था

* [एस. आर. एफ/ नेट] शोध छात्रा, संगीत एवं प्रदर्शन कला विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलहाबाद (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

है जिस ढंग से वह सामाजिक प्राणियों द्वारा आंकी जाती है। अतः यह व्यक्ति के व्यवहारों का एक समायोजित संकलन है जो व्यक्ति अपने सामाजिक व्यवस्थापन के लिए करता है।''[4]

उपर्युक्त परिभाषाओं में डेशील की परिभाषा व्यक्तित्व की प्रतिक्रियाओं और व्यवहारों का ढंग बतलाती है। यह कुछ हद तक युक्तिसंगत प्रतीत होता है क्योंकि यह व्यक्तित्व पर पूर्णरूप से प्रकाश डालती है।

व्यक्तित्व के तीन मुख्य प्रकार माने गये हैं :

1. *बहिर्मुखी-* ऐसे व्यक्तित्व के लोगों की रूचि बाह्य जगत में होती है।
2. *अन्तर्मुखी-* ऐसे व्यक्तित्व से युक्त लोगों की रूचि स्वयं में निहित होती है।
3. *विकासोन्मुखी-* विकासोन्मुखी व्यक्तित्व में बहिर्मुखी एवं अन्तर्मुखी दोनों व्यक्तित्वों का मिश्रण होता है और वे जीवन के विकास की आवश्यकताओं के लिए स्पष्ट निर्णय लेते हैं।

इस प्रकार विकासोन्मुखी व्यक्तित्व वाला ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास करने में सदा तत्पर रहता है। ''व्यक्तित्व का सबसे व्यवस्थित एवं स्पष्ट दृष्टिकोण सांख्य दर्शन में मिलता है। पुरुष तथा प्रकृति का समन्वय ही व्यक्तित्व है। पुरुष से तात्पर्य व्यक्तित्व के मानसिक तत्वों से है एवं प्रकृति शारीरिक तत्व है। इन दोनों के मेल से प्रत्येक व्यक्ति का व्यक्तित्व त्रिगुणात्मक व्यक्तित्व (सत्व, रजस तथा तमस) का मिश्रण होता है।

अतः इन गुणों की न्यूनाधिक मात्रा से मनुष्य का व्यक्तित्व एवं व्यवहार भिन्न-भिन्न होता है। भारतीय सिद्धान्त के अनुसार मनुष्य कई पूर्वजन्मों के संस्कारों को लेकर पैदा होता है और तमस से सत्व की ओर अग्रसर होना ही मानव व्यक्तित्व का या मानव जीवन का परम लक्ष्य माना गया है।''[4]

व्यक्तित्व शब्द मानवीय मूल्यों का ही सम्मिलित स्वरूप है और इसमें ''वसुधैव कुटुम्बकम'' की भावना अन्तर्निहित है।

व्यक्तित्व विकास के विभिन्न आयाम

व्यक्तित्व विकास का मूल अर्थ है मनुष्य का मानवीय मूल्यों से परिपूर्ण होना। मनुष्य का सद्गुणों, सदाचारी, उदार और जनकल्याण की भावनाओं से ओत-प्रोत होना ही उसके व्यक्तित्व का विकास कहा जा सकता है। इस प्रकार सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अक्रोध, दया, क्षमा, शौर्य, धैर्य, विवेक, समता जैसे मानवीय मूल्यों को अपने व्यक्तित्व में समाहित करना ही व्यक्तित्व का विकास है।

शास्त्रों में व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास के मुख्य पाँच आयाम बताये गये हैं, जो निम्नलिखित है- 1. शारीरिक विकास, 2. मानसिक विकास, 3. बौद्धिक विकास, 4. आत्मिक विकास, 5. आध्यात्मिक विकास।

पाँचों आयाम मानव व्यक्तित्व के सम्पूर्ण विकास में सहायक है। ये मानवीय तत्वों को एक सूत्र में जोड़ते हुए व्यक्तित्व को विशिष्ट स्वरूप प्रदान करते हैं।

1. *शारीरिक विकास :* व्यक्तित्व का सम्पूर्ण विकास शारीरिक विकास पर निर्भर करता है। व्यक्ति का शारीरिक विकास होना अर्थात् मनुष्य का स्वस्थ, ऊर्जावान एवं आकर्षक होना है इसलिए आज मनुष्य के लिए शारीरिक विकास के प्रति जागरूक होना आवश्यक है। यद्यपि आज शारीरिक विकास के लिए व्यायाम, योग आदि किये जा रहे हैं, किन्तु संगीत एक ऐसा साधन है जिसके अभ्यास से शारीरिक व्यायाम एवं योग की साधना स्वतः ही हो जाती है।

संगीत उत्तमकोटि का शारीरिक व्यायाम भी है। गायन के द्वारा हमारे फेफड़ों का बड़ा ही सुन्दर और उपयोगी व्यायाम हो जाता है। गायन द्वारा श्वाँस पर उचित नियंत्रण कर पाना संभव है क्योंकि कंठ द्वारा स्वर साधना करते हुए प्राणायाम स्वतः ही हो जाता है, जो कि श्वाँस नियंत्रण हेतु सर्वश्रेष्ठ व्यायाम है और साथ ही उत्तम स्वास्थ्य की कुंजी भी है।

''स्वरों के उतार-चढ़ाव व स्वर समुदायों के नव-निर्माण से श्वास प्रक्रिया एवं नृत्य के द्वारा अंग संचालन की प्रक्रिया तथा सामूहिक गान व नृत्य में सामूहिक भावना से ओत-प्रोत होकर शारीरिक विकास होता है।''[5]

आज मनुष्य का शारीरिक विकास उचित ढंग से नहीं हो पा रहा है इसका मुख्य कारण है चिन्तित रहना, तनावपूर्ण रहना, विभिन्न भावों का दमन करना तथा श्वाँस का ठीक से आवागमन न होना आदि किन्तु संगीत को अपने जीवन में

अपनाने के पश्चात् शरीर को सारी विकृतियों से छुटकारा मिल जाता है और एक स्वस्थ एवं संवेदनशील शरीर का निर्माण होता है।

2. *मानसिक विकास :* मनुष्य के मानसिक विकास के लिए आवश्यक है कि उसका मन उसके वश में हो, जिसने मन एवं इन्द्रियों को अपने वश में कर लिया वही व्यक्ति अपने विकास की कामना कर सकता है ''क्योंकि मन ही मनुष्य को पथभ्रष्ट, अनैतिक एवं कुटिल भी बना देता है। अतः मन को विकासशील बनाने के लिए एकाग्रता आनन्दशक्ति एवं पर्याप्त विश्राम की आवश्यकता होती है।''[6]

व्यक्ति के मानसिक विकास में संगीत की अद्वितीय भूमिका है। संगीत एक ललित कला है तथा इसका मन से अविच्छिन्न सम्बन्ध है।

प्रसिद्ध दार्शनिक 'प्लेटो' व्यक्ति पर संगीत के प्रभाव को स्वीकारते हुए कहते हैं कि एक सफल शिक्षक को संगीतज्ञ भी होना चाहिए क्योंकि अन्य सभी विषयों से बढ़कर संगीत एक ऐसा माध्यम है जो न केवल मानसिकता को प्रशिक्षित करता है वरन् मनोभावों को भी प्रशिक्षित करके उन्हें विशुद्ध स्वरूप प्रदान करता है जिससे व्यक्ति के दुर्गुण दूर हो जाते हैं। संगीत का उपयोग मानसिक विकृति ठीक करने के लिए भी होता है क्योंकि संगीत में उत्तेजना को कम करने की तथा शान्ति दिलाने की दिव्यशक्ति है। इस प्रकार मन का शान्त, नियंत्रित एवं एकाग्र तथा मस्तिष्क का चिन्ताओं से मुक्त रहना, स्वस्थ प्रसन्न एवं सुखी रहने के लिए अत्यावश्यक है। यह एक मनोवैज्ञानिक सत्य है कि यदि मानव सदा प्रसन्नचित और संतुलित विचारों वाला रहेगा तो वह जीवन की किसी भी समस्या को सुलझाने में सफल होगा।

3. *बौद्धिक विकास :* मनुष्य का किसी विषय के सम्बन्ध में तर्क एवं विवेक के साथ विचार करना तथा निर्णय लेना साथ ही अपने ज्ञान, विवेक एवं तर्क से परिस्थिति के अनुसार अपने व्यक्तित्व को ढाल लेना और बौद्धिक चेतना के आधार पर ही आचार-व्यवहार करना उसके व्यक्तित्व में बौद्धिक विकास को दर्शाता है।

''किसी भी शिक्षा के अध्ययन के फलस्वरूप व्यक्ति का ज्ञानात्मक विकास होना ही उसके व्यक्तित्व का बौद्धिक विकास कहा जाता है।''[7]

बौद्धिक विकास में भी संगीत का अमूल्य योगदान है। संगीत के क्षेत्र में हुए बौद्धिक चिन्तन का ही परिणाम है कि हम आज भारतीय संगीत की विशाल सम्पदा को दिन-प्रतिदिन विकसित एवं नवीन करते जा रहे हैं।

''बौद्धिक कौशलता के फलस्वरूप ही कलाकारों में नये राग बनाना, स्वरिलिपि पद्धति पर विचार करना, वैज्ञानिक उपकरणों का प्रयोग बढ़ाना, राग के अनुसार परन्तु सामाजिक दृष्टि से उत्कृष्ट रचनाओं को ही अपनाना तथा संगीत व साहित्य का उचित समन्वय बनाये रखने की क्षमता का विकास होना, संगीत के किसी भी विषय पर अपना विचार या तर्कसंगत विचार प्रस्तुत करने की क्षमता भी बौद्धिक विकास ही है।''[8]

अतः यह प्रमाणित होता है कि संगीत निश्चित रूप से बौद्धिक दृष्टिकोण से भी मानव व्यक्तित्व को पूर्ण विकसित करता है।

4. *आत्मिक विकास :* मनुष्य के आत्मिक उत्थान का प्रमुख मार्ग है- सत्य की पहचान अर्थात् जीवन की सत्यता से परिचित होना या स्वयं में सत्य को खोजना। जिस मनुष्य ने सत्य के मार्ग पर चलना सीख लिया उस व्यक्ति का आत्मिक विकास सुनिश्चित है और इसमें संगीत पूर्णतः सक्षम है। संगीत श्रवण से सतोगुण की वृद्धि होती है क्योंकि संगीत प्रभाव के फलस्वरूप श्रोता के हृदय में स्थित रजोगुण तथा तमोगुण दब जाते हैं तथा सत्व गुण का उदय होता है।

संगीत कला मनुष्य को जीवन के मूल सत्य से परिचित कराता है, जिसके कारण मनुष्य जो भी काम करता है वह सत्यता का प्रतीक होता है क्योंकि आत्मा तो सदा सत्य का ही आभास कराती है, इसलिए जिस व्यक्ति का आत्मिक विकास या आत्मिक रूपांतरण हो जाता है उसका जीवन सत्यमार्ग की ओर बढ़ना शुरू हो जाता है। संगीत का जानकार कभी अनिष्ट कार्य कर ही नहीं सकता है।

अतः जीवन को सत्य की ओर उन्मुख रखने के लिए संगीत अति आवश्यक है।

5. *आध्यात्मिक विकास :* प्रारम्भ से ही भारतीय साधकों और आराधकों का परम लक्ष्य मोक्ष प्राप्ति तथा परमात्मा से सम्बन्ध स्थापित करना रहा है। मोक्ष प्राप्ति का सर्वोत्तम माध्यम संगीत होने के कारण इसे आध्यात्म के रंग में रंगने

का पूरी तरह से प्रयत्न किया गया। आध्यात्मिक संगीत ही जीवन को पवित्र बनाकर आत्मोन्नति द्वारा मोक्ष मार्ग पर ले जाता है।

''आध्यात्म तथा संगीत का गठबंधन भारतीय परम्परा में दृढ़मूल रहा है। भारतीय दृष्टिकोण के अनुसार संगीत शान्त मस्तिष्क के लिए केवल मनोविनोद का साधन नहीं वरन् ईश्वर के अनुसंधान से परम मंगल का विधायक है।''[9]

अध्यात्म के रंग में रंगकर हमारे महान संगीतज्ञों ने विश्व के प्रत्येक रूप में सर्वव्यापी दिव्य सत्ता का साक्षात्कार किया है तथा अति शृंगारिक समझी जाने वाली वस्तुओं में भी आध्यात्म तत्व की पृष्ठभूमि को अक्षुण्य रखा है।

''संगीत साधक आध्यात्म पक्ष के सहारे ही शरीर, इन्द्री और मन से ऊपर आत्म तत्व को प्राप्त करता है।''[10]

हमारे संतजनों ने संगीत की शक्ति को पहचाना था और वे जानते थे कि संगीत में ऐसी शक्ति है जिसके द्वारा मानव मन में सद्भावना का संचार करके आध्यात्म की ओर मन को मोड़ा जा सकता है इसीलिए तो मीरा, चैतन्य महाप्रभु आदि ने भगवद् भजन एवं प्रभु के गुणगान में अपने को समर्पित कर संगीत के दिव्य स्वरूप से दुनिया को परिचित कराया। ईश्वर के गुण, कर्म और नामों का उच्चारण ही कीर्तन है, ईश्वर का प्रत्येक नाम एक मंत्र के समान है। स्वर और लय में ही मंत्र की शक्ति प्रतीत होती है। कुछ बंदिशें निम्न प्रकार से हैं जो व्यक्तित्व एवं आध्यात्मिक विकास में प्रेरणादायक सिद्ध होती है, ''राग कौंसी कान्हड़ा/ (द्रुतख्याल) त्रिताल/ स्थाई/ सोचत काहे मनवा रे/ हमरे तो राम रखवारे/ अन्तरा/ बाधा कटे विध्न सब हारे/ रामरंग नाम उचारे/ सोचत काहे मनवा रे.../ राग खमाज/ द्रुतख्याल (त्रिताल)/ स्थाई/ नमन करूँ मैं सद्गुरू चरना/ सब दुःख हरना भव निस तरना/ अन्तरा/ शुद्ध भाव नित अन्तः करना/ सुर नर किन्नर वन्दित चरना।''

अतः इसी प्रकार अनेकों सांगीतिक रचनाएँ मानव व्यक्तित्व के आध्यात्मिक विकास में सहायक प्रतीत होता है।

वर्तमान समय में आधुनिकता ने मनुष्य को भाव-शून्य बना दिया है, तथा मनुष्य पाश्विक विचारों से परिपूर्ण होता जा रहा है उसमें नैतिक मूल्यों, संस्कारों को समझने की क्षमता लेस मात्र भी नहीं है। ऐसे समय में मनुष्य-मनुष्य के बीच खाई को पाटकर और एक सुसंस्कृत समाज एवं राष्ट्र का निर्माण संगीत को आधार बनाकर किया जा सकता है।

वास्तव में ईश्वर भक्ति, चरित्र-निर्माण, व्यक्तित्व विकास, सामाजिक कर्त्तव्यों का पालन संस्कृति का संरक्षण, सात्विकतापूर्ण जीवनयापन, आत्मज्ञान, विवेक एवं सद्भावना ये सभी भारतीय शिक्षा के प्रमुख अंग है जिसकी आज के समाज को बहुत आवश्यकता है जो केवल संगीत के द्वारा ही संभव है।

अतः मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में संगीत का महत्व है और यह पूर्णरूप से सत्य है कि सामाजिक परिप्रेक्ष्य में केवल संगीत मानव व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास कर उसे एक आदर्श सहृदय सत्यवादी एवं ओजपूर्ण व्यक्तित्व का स्वामी बना सकता है।

सहायक ग्रन्थ

[1] भारतीय शास्त्रीय संगीत मनोवैज्ञानिक आयाम- डा0 साहित्य कुमार नाहर, पृष्ठ संख्या 49

[2] शिक्षा का मनोविज्ञान- डा0 एस0 एस0 माथुर, पृष्ठ संख्या 497

[3] वही, पृष्ठ संख्या 500

[4] Fundamental of objective psychology- J.E. Dashiel Boston Hougton 1929, Page 55

[5] संगीत की रसिक परम्परा- डा0 प्रमिला प्रियहासिनी, पृष्ठ संख्या 12

[6] भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली का वर्तमान स्तर- डा0 मधुबाला सक्सेना, पृष्ठ संख्या 14

[7] संगीत चिन्तन- डा0 सुरेखा सिन्हा, पृष्ठ संख्या 12

[8] भारतीय संगीत शिक्षण प्रणाली का वर्तमान स्तर- डा0 मधुबाला सक्सेना, पृष्ठ संख्या 14

[9] वही, पृष्ठ संख्या 136

[10] संगीत निबंध (संगीत कला की आध्यात्मिक पृष्ठभूमि)- शरतचन्द्र परांजपे, पृष्ठ संख्या 67

[11] विश्व संगीत अंक, 1985 (प्राक्कथन)।

पत्रावली संख्या V-34564,पंजीकरण संख्या 533/2007-2008
आन्वीक्षिकी ISSN 0973-9777

भारतीय शोध समग्र पत्रिका (2014) **8,99-102**
प्रकाशनार्थ स्वीकृत 15 अप्रैल 2014

मनुस्मृति में नारी के अधिकार एवं कर्तव्य के सकारात्मक पक्ष

रमेश चन्द*

लेखक का घोषणा-पत्र

भारतीय शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशनार्थ प्रेषित *मनुस्मृति में नारी के अधिकार एवं कर्तव्य के सकारात्मक पक्ष* शीर्षक लेख / शोध प्रपत्र का लेखक मैं *रमेश चन्द* घोषणा करता हूँ कि लेखक के रूप में इस लेख की सभी सामग्रियों की जिम्मेदारी लेता हूँ, क्योंकि मैंने स्वयं इसे लिखा है और अच्छी तरह से पढ़ा है और साथ ही अपने लेख / शोध प्रपत्र को शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी में प्रकाशित होने की स्वीकृति देता हूँ। मैं शोध पत्रिका आन्वीक्षिकी के सम्पादक मण्डल को अपने लेख के संशोधन एवं सम्पादन की पूर्ण अनुमति देता हूँ। आन्वीक्षिकी में लेख प्रकाशित होने पर इसके कापीराइट का अधिकार सम्पादक को देता हूँ।

मनु ने मनुस्मृति में सम्पत्ति विभाजन के सन्दर्भ में भी बताया है साथ ही स्त्रियों को भी महत्वपूर्ण स्थान दिया है। मनु ने मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से बताया है कि जो पिता अथवा पति आदि सम्बन्धित वर्ग मोहवश स्त्री धन से अर्थात् बेटी अथवा पत्नी आदि के भूषण, वस्त्र और सवारी इत्यादि बेचकर गुजर करते हैं, वे नरकगामी होते हैं।[1]

कन्या के लिए धन के दान का विधान मनु ने किया है। मनु कहते हैं कि कन्याओं के निमित्त वर का दिया हुआ भूषण वस्त्रादिरूप शुल्क यदि पिता भ्राता आदि न लें तो वह बिक्री नहीं हुई। जिस कारण कुमारियों का पूजन अहिंसात्मक अर्थात् दयामूलक है।[2] मनु वस्त्र आभूषण आदि द्वारा कन्या के पूजन के प्रबल समर्थक हैं वे कहते हैं कि विशेष कल्याण की इच्छा रखने वाले, माँ, बाप, भाई, पति तथा देवर इत्यादि सम्बन्धियों को चाहिये कि कन्या को भूषण, वस्त्र और भोजन पाक सामग्रियों द्वारा उन्हें पूजित करें।[3]

मनु ने कन्या को धन आदि देने अथवा न देने के फल के सन्दर्भ में भी बताया है। मनु कहते हैं कि जिस कुल में स्त्रियाँ धन आदि द्वारा पूजित (सम्मानित) होती हैं, उस कुल पर देवता प्रसन्न होते हैं। और जहाँ स्त्री का धन आदि दान में अपमान होता है वहाँ किसी का कल्याण नहीं होता है। वहाँ यज्ञ आदि क्रियाएं निष्फल हो जाती हैं। जिस कुल में बहू बेटियों अथवा स्त्री का अभाव होता है अथवा वे सतायी जाती है वह कुल शीघ्र नष्ट हो जाता है। किन्तु जहाँ इन्हें किसी तरह का दुःख नहीं दिया जाता वहाँ धन की सदैव बढ़ोत्तरी होती है। इसी कारण मनु स्त्रियों को विशेषतः उत्सवों में भी पूज्यनीय मानते हैं।[4]

मनु कहते हैं ये स्त्रियाँ सदैव आभूषण, वस्त्र एवं पाक सामग्रियों से सन्तुष्ट करने योग्य हैं। जिन पुरूषों को समृद्धि की इच्छा हो, वे किसी शुभ आयोजन अथवा उत्सवों में स्त्री का धनादि के द्वारा सम्मान करें।

मनु ने सम्पत्ति विभाजित करते समय स्त्रियों पर विशेष ध्यान दिया है। वे किसी न किसी बहाने स्त्री को धन देने के पक्षधर रहे हैं। मनु कहते हैं[5] कि यदि स्त्री आभूषण एवं वस्त्र द्वारा सुशोभित न की जाय तो वह खिन्न हृदय होने के कारण स्वामी को आनन्दित नहीं कर सकती, फिर स्वामी की अप्रसन्नता से सन्तानोत्पत्ति में बाधा पड़ जाती है। आगे मनु

* सहायक प्राध्यापक, हिन्दी एवं संस्कृत, सर्वोदय किसान इण्टर कॉलेज [पौढ़ीराम] गोरखपुर (उत्तर प्रदेश) भारत

© लेखक 2014, एम.पी.ए.एस.वी.ओ.मुद्रण एवं आन्वीक्षिकी सदस्य सहसंयोजन से प्रकाशित,सर्वाधिकार सुरक्षित मनीषा प्रकाशन। आज्ञा हेतु कृपया सम्पर्क करें : E-mail : maneeshashukla76@rediffmail.com & ijraeditor@yahoo.in, इस प्रपत्र को www.anvikshikijournal.com पर पढ़ें

यह भी कहते हैं कि स्त्रियों के भूषण वस्त्र की जगमगाहट से सारा कुल जगमगा उठता है। परन्तु इनका मलिन वेश वंश को मलिन बना देता है।

मनु कहते हैं कि 'माता एवं पिता' के लोकान्तर गमन करने पर सब भाई मिलकर पिता के धन को बराबर बाँट लें माता (एवं पिता) की जीवित अवस्था में उन्हें सम्पत्ति विभाजन का कोई अधिकार नहीं।[6] मनु ने स्त्री को यहाँ माता के रूप में महत्वपूर्ण स्थान दिया है। मनु ने अविवाहित बहनों के लिए भी सम्पत्ति में हिस्से की व्यवस्था की हैं वे कहते हैं कि अविवाहित बहनों के लिए सब भाई अपने अपने अंशों से अलग धन दें। जो अपने अंश का चौथा भाग बहन के विवाह हेतु नहीं देता, वह पतित होता है। मनु ने आगे यह भी कहा है कि यदि ब्राह्मण के चारों वर्ण की स्त्रियाँ हों और उन सब में पुत्र हों तो उन सबके बीच भी सम्पत्ति विभाजन होना चाहिये।[7]

मनु ने माता के धन के विभाग के सन्दर्भ में कहा है कि माता के मर जाने पर सभी सगे भाई और अविवाहिता बहनें मातृधन को बराबर बाँट लें।[8] विवाहिता बहन की कुँवारी कन्याओं को भी मातामही (नानी) के धन में से उनके सन्तोषार्थ प्रसन्नता पूर्वक कुछ दे देना चाहिये।[9] मनु कहते हैं कि पति ने प्रसन्न होकर स्त्री को जो अन्वाधेय[10] दिया हो, अर्थात् विवाहोपरान्त पति द्वारा जो धन स्त्री को प्राप्त हुआ हो, पति की जीवित अवस्था में स्त्री मर जाय तो उसका सब धन उसकी सन्तान का होता है।[11]

आसुर आदि विवाहों में स्त्री को जो धन दिया जाता है वह उसके निःसन्तान मरने पर उसके मां (बाप) को मिलना चाहिये।[12] मनु कहते हैं कि ब्राह्मण की अनेक वर्ण की स्त्रियों के जो कुछ धन उनके पिता द्वारा दिये गये हों, यदि वे सन्तानरहित मर जाय तो उनका धन ब्राह्मणी सौत को या उसकी सन्तान को मिलना चाहिये।[13]

मनु कहते हैं कि पति की जीवित अवस्था में उसकी सम्मति से स्त्रियों ने जो भूषण धारण किये हों, पति के मर जाने पर धन बाँटते समय दामाद उसे न बाँटें, बांटने वाले पतित होते हैं, ''पत्यों जीवति यः भिरलङ्कारो धृतो भवेत्। न तं भजेरन्दायादा भजमानाः पतन्ति ते।।'' (मुन0 9/200)

आगे मनु यह भी कहते हैं कि निःसन्तान पुत्र का हिस्सा उसकी माता को मिलेगा। माता के अभाव में वह धन उसकी दादी को मिलेगा अर्थात् पिता की माँ को मिलेगा।[14] मनु ने स्त्रियों को विभिन्न रूपों में मनुस्मृति में प्रस्तुत किया है। स्त्री की बाल्य, कौमार्य, युवा एवं वृद्धावस्था सभी के सन्दर्भ में विचार किया है। मनु कहते हैं बालिका हो या युवा हो, वृद्ध हो उसे स्वतन्त्रता पूर्वक कोई कार्य नहीं करना चाहिये।[15] बाल्यकाल में पिता के अधीन और पति का परलोक होने पर स्त्री पुत्रों के अधीन होकर रहे।[16]

मनु ने कुटुम्ब में माँ बहन या बेटी के साथ एकान्तवास का निषेध किया है,[17] यह अप्रत्यक्षतः पुरूष (विद्वान्) के लिए कहा गया है किन्तु इसका स्त्री के साथ भी सम्बन्ध है। मनु ने माता को आत्मा की मूर्ति माना है।[18] मनु ने यह भी कहा है कि माँ (पिता) को सदैव प्रसन्न रखना चाहिये इन के प्रसन्न रहने पर सभी तप पूरे हो जाते हैं। मनु ने माता की सेवा के सन्दर्भ में भी मनुस्मृति में उल्लेख किया है।[19] मनु ने कहा है कि मातृभक्ति से व्यक्ति इस लोक का उपभोग करता है।[20] जो माता का आदर करता है वो सभी धर्मों का आदर करता है।[21] जो इसका अपमान करता है उस व्यक्ति की सारी क्रियाएं निष्फल होती हैं।

मनु ने कुटुम्ब में पत्नी के भोजनावसर पर अन्य बान्धवों के भी भोजन करने की बात कही है।[22] परिवार में नयी बहू, कन्या, रोगी और गर्भिणी स्त्रियों को अतिथियों के भी पूर्व बिना कुछ विचार किये भोजन करने कराने के सन्दर्भ में कहा है।[23] मनु कहते हैं कि पहले अतिथि, ब्राह्मण और आत्मीय, शोष्यवर्गो को भोजन कराकर जो पीछे अन्न बचे वह (पति) पत्नी भोजन करें।[24] मनु ने पुरूष के लिए स्त्री के साथ एक थाली में भोजन करने पर निषेध किया है।[25]

गुरूवर्ग (माता पिता आदि) और भृत्यों के पोषणार्थ सबसे अर्थात् हेयजनों से भी धन का दान लिया जा सकता है।[26] ऐसा मनु ने कहा है। मनु ने कहा है कि मृताशौच सभी सपिण्डों को बराबर होता है, जन्माशौच माँ (बाप) को ही होता है। इसमें विशेषता इतनी है कि जननी दस रात तक अपवित्र रहती है किन्तु पिता स्नान मात्र से ही शुद्ध[27] हो जाता है।[28]

गर्भ स्राव होने पर जितने महीने का गर्भ हो उतने संख्यक रात में स्त्रीशुद्ध होती है, रजस्वला साध्वी स्त्री रज निवृत्त होने पर स्नान से शुद्ध होती है।[29] अविवाहिता कन्या वाग्दान के अनन्तर मर जाय तो उसके भावी पति, देवर आदि तीन दिन में शुद्ध होते हैं।[30] मनु ने स्त्रियों के मुख को सदैव शुद्ध माना है।[31] मनु ने कहा है कि पति के असन्तुष्ट रहने पर भी स्त्री को सदा प्रसन्न होकर चतुराई के साथ घर के कामों को सम्हालना चाहिये, भूषण एवं पाकपात्र आदि नित्यव्यवहार्य्य सामग्रियों को साफ करना चाहिये और जहाँ तक हो सके कम खर्च करना चाहिये।[32] पिता या भ्राता जिस पुरूष का हाथ धरा दे जीवित अवस्था में शुद्ध हृदय से उसकी सेवा करे।[33] स्त्रियों के लिये न अलग यज्ञ है, न व्रत और न उपवास है। पति की सेवा से ही वे स्वर्ग में पूजित होती है ऐसा मनु ने कहा है, ''नास्ति स्त्रीणां पृथग्यज्ञो न व्रतं नाप्युपोषणम्। पतिं शुश्रूषते तेन तेन स्वर्गे महीयते।।'' (मनु0 5/155)

पतिव्रता स्त्री ही स्वर्ग[34] जाती है ऐसा भी मनुस्मृति में मनु ने कहा है; पर पुरूष गमन करने वाली स्त्री को स्वर्ग नहीं मिलता।[35] शास्त्रोक्त विधि से चलने वाली स्त्री यदि पहले मर जाय तो धर्मज्ञ द्विज अग्निहोत्र और यज्ञपात्रों के द्वारा उसकी दाह क्रिया करे।[36]

मनु कहते हैं ग्राम्य आहार एवं परिधान आदि को त्यागकर स्त्री को साथ ले या उसे पुत्र के हाथ सौप कर स्वयं वन को जाय।[37] साथ ही मनु यह भी कहते हैं कि सन्तान का जनना, बच्चों का पालन करना, प्रतिदिन पाक प्रक्रिया और लोकव्यवहार का प्रत्यक्ष कारण स्त्री ही है, ''उत्पादनमपत्यस्य जातस्य परिपालनम। प्रत्यहं लोकयात्रायाः प्रत्यक्षं स्त्रीनिबन्धनम्।।'' (मनु0 9/27) सन्तान, अग्निहोत्र आदि धर्मकार्य, सेवा, उत्कृष्ट रति, पितरों तथा अपना स्वर्गसाधन, ये सभी कुछ पत्नी के अधीन है।

मनु कहते हैं कि स्वर्ग लोक पाने की इच्छा करने वाली सुशीला स्त्री अपने जीते या मरे पति का कुछ भी अप्रिय न करे अर्थात् व्यभिचार आदि निन्दित कर्म से पति का परलोक न बिगाड़े।[38] विधवा स्त्री के सम्बन्ध में मनु ने कहा है कि विधवा स्त्री को चाहिये कि पति के मर जाने पर पवित्र फल, फूल और मूल खाकर जहाँ तक हो सके देह को साधे, परन्तु पर पुरूष का कभी नाम न ले।[39] विधवा स्त्री पतिव्रता के उत्तम धर्मों को चाहती हुई मरते दम तक क्षमायुक्त और नियमपूर्वक ब्रह्मचारिणी होकर रहे।[40] मनु कहते हैं जो पतिव्रता स्त्री पति के मरने पर ब्रह्मचर्य में स्थित रहती है, वह पुत्रहीन होने पर भी ब्रह्मचारी पुरूषों की भाँति स्वर्गलोक को जाती है।[41]

जो स्त्री सन्तान के लोभ से पति का अतिक्रमण करती है अर्थात् पर-पुरूष के साथ व्यभिचार करती है, इस लोक में उसकी निन्दा होती है और उस पुत्र से उसे स्वर्ग भी नहीं मिलता; क्योंकि अन्य पुरूष से उत्पन्न की गई वह सन्तान शास्त्र सम्मत नहीं है, और दूसरे की स्त्री में उत्पादित सन्तान भी उत्पादक की नहीं होती है। पतिव्रता स्त्रियों को दूसरे पति का उपदेश कहीं नहीं किया गया है।[42] ऐसा मनु कहते हैं इस बात से यह भी स्पष्ट हो जाता है कि मनु विधवा पुनर्विवाह के पक्षधर नहीं थे किन्तु मनु पुनः कहते हैं सन्तान न होने पर स्त्री को चाहिये कि गुरूजनों से नियुक्त होकर देवर या सपिण्ड (पुरूष) से अभिलषित पुत्र उत्पन्न करावे। ऐसा विधान विधवाक्त के लिए भी है, गुरूजन से नियुक्त पुरूष विधवा में एक पुत्र पैदा करे पर दूसरा पुत्र कभीं नहीं।[43] इस विषय में दूसरे आचार्यो का मत है कि नियुक्त पुरूष धर्मपूर्वक द्वितीय पुत्र का भी उत्पादन करे।[44] वैवाहिक वेदमंत्रों में कहीं नियोग का उल्लेख नहीं है और नहीं विवाह विधायक शास्त्र में ही विधवा विवाह का उल्लेख ऐसा मनु कहते हैं, ''नो द्वाहिकेषु मन्त्रेषुनियोगः कीर्त्यते क्वचित्। न विवाहविधावुक्तं विधवावेदनं पुनः।।'' (मनु0 9/65)

वाग्दानोत्तर विधवा अर्थात् जिस कन्या का वाग्दानोत्तरपति मर जाये तो उसे इस विधान से देवर के साथ ब्याह दे ऐसा मनु कहते हैं।[45]

स्रोत

[1] मनु0 3/52-21

[2] मनु0 3/54-22

[3] मनु0 3/55-23

[4] मनु0 3/56-27,59
[5] मनु0 3/61-62
[6] मनु0 9/104-26
[7] मनु0 9/149-156
[8] मनु0 9/192-21
[9] मनु0 9/139
[10] विवाहात्परतो यत्तुलब्धं भर्तृकुले स्त्रिया। अन्वाधेयं तुदक्तं तु सर्वबन्धुकुले तथा।। कात्यायन
[11] मनु0 9/195-196
[12] मनु0 9/197
[13] मनु0 9/198
[14] मनु0 9/217
[15] मनु0 5/147
[16] मनु0 5/148
[17] मनु0 2/215
[18] मनु0 2/226-227
[19] मनु0 2/228-229, 230
[20] मनु0 2/233
[21] मनु0 2/234-237
[22] मनु0 3/113
[23] मनु0 3/114-115
[24] मनु0 3/116
[25] मनु0 4/43-26
[26] मनु0 4/251-252
[27] जाते पुत्रे पितुः स्नानं सचैलं तु विधीयते। माता शुद्धयेद्देशहेन स्नानात्तुसपर्शन पितुः।। इति संर्क्तः
[28] मनु0 5/62
[29] मनु0 5/66
[30] मनु0 5/72
[31] मनु0 5/130
[32] मनु0 5/150
[33] मनु0 5/151
[34] मनु0 5/60
[35] मनु0 5/161-163
[36] मनु0 5/167-168
[37] मनु0 6/3
[38] मनु0 5/156
[39] मनु0 5/157
[40] मनु0 5/158
[41] मनु0 5/160
[42] मनु0 5/162
[43] मनु0 9/59-60
[44] मनु0 9/61-62, 64
[45] मनु0 9/69-70, 71

लेखकों के लिए निर्देश

शोधपत्र का अनुरोध

लेखक अपना शोधपत्र डॉ. मनीषा शुक्ला ,प्रधान सम्पादिका आन्वीक्षिकी भारतीय शोध पत्रिका को ई-मेल पर प्रेषित करें। (maneeshashukla76@rediffmail.com)

प्राप्त शोधपत्र पत्रिका में प्रकाशन के पूर्व पुनर्निरीक्षित किये जायेंगे। स्वीकृत शोधपत्र कहीं और प्रकाशित नहीं होना चाहिए और न ही उस शोधपत्र का कोई भी भाग प्रधान सम्पादिका के अनुमति के बिना कहीं और प्रकाशित किया जा सकता है। कृपया अपने शोधपत्र की पाण्डुलिपि निम्न भागों में तैयार करें,शीर्षक ;सारांश ;पाण्डुलिपि ;पुस्तक संदर्भ सूची। कृपया पुनर्निरीक्षण की गुणवत्ता में सहायता करने हेतु अपना नाम पता पाण्डुलिपि पर न दें।

शीर्षक :शीर्षक पाण्डुलिपि पर अवश्य दें,किन्तु अपना पूरा नाम,पता,संस्था जहाँ पर अध्ययन अथवा अध्यापन कार्य सम्पादित किया गया हो, आपका विषय,दूरभाष अथवा मोबाइल,फैक्स,ई-मेल पत्राचार हेतु अलग पृष्ठ पर अवश्य दें। उपर्युक्त तथ्य आपके शोधपत्र के शब्द सीमा के अन्तर्गत ही माना जायेगा।

सारांश :कृपया शोधपत्र का सारांश 120 शब्दों में दें।

पाण्डुलिपि :इसके अन्तर्गत मुख्य पाठ्य सामग्री होगी ; जो 5 से 10 पृष्ठ तक होनी चाहिये। शोधपत्र 10 पृष्ठ से (सारांश,शब्द संक्षेप,संदर्भ सूची समेत)अधिक प्रकाशन हेतु स्वीकार नहीं किया जायेगा। अन्यथा वृहद् शोधपत्र(10 पृष्ठ से अधिक) प्रकाशन में देर भी हो सकती है। लेखक को यह बात स्वीकार होनी चाहिए कि शोधपत्र पुनर्निरीक्षण के दौरान किये गये संशोधन उन्हें मान्य होंगे। शोधपत्र प्रकाशन के दौरान त्रुटि की सम्भावना न बने इसका पूरा ध्यान रखा जाता है फिर भी कोई त्रुटि पाये जाने पर लेखक संशोधित रीप्रिंट प्राप्त कर सकता है ; पत्रिका में संशोधन की व्यवस्था नहीं है।

सन्दर्भ वर्णमालाक्रामानुसार :शोधपत्र के समापन पर कृपया संदर्भ वर्णमाला क्रमानुसार दें। पत्रिका का वर्ष,लेखक, पृष्ठ संख्या,भाग इत्यादि विस्तार से दें। पुस्तक शीर्षक या पत्रिका शीर्षक इटालिक दें।

पुस्तक :प्रकाशक का नाम,संस्करण संख्या,प्रकाशन वर्ष,लेखक का नाम,पुस्तक का नाम,पृष्ठ संख्या

पत्रिका :पत्रिका का नाम,लेख का शीर्षक,लेखक का नाम,प्रकाशक का नाम,अंक संख्या/माह,वार्षिक अथवा अर्द्धवार्षिक अथवा मासिक जो भी हो स्पष्ट करें।

समाचार पत्र :प्रकाशक,तिथि,सन् ,पृष्ठ संख्या,

इण्टरनेट :वेबसाइड,पृष्ठ संख्या,मुख्य शीर्षक,अन्त: शीर्षक।

मानचित्र एवं सारणी :मानचित्र एवं सारणी अथवा चित्र शोधपत्र की समाप्ति के अन्त में दें। यह ब्लैक एण्ड व्हाइट ही होना चाहिए। इसका स्पष्ट संकेत पाण्डुलिपि में दें(उदाहरण सारणी संख्या 1)

विशेष :कृपया अपना शोधपत्र ई-मेल करने के बाद डॉक से अवश्य भेजें। अपने शोधपत्र के साथ-साथ अपना वायोडाटा, फोटो,स्वपता लिखा लिफाफा(25 रू के टिकट सहित)भेजें। शोधपत्र यदि हिन्दी भाषा में है तो ए.पी.एस प्रियंका रोमन(ए.पी.एस. कार्पोरेट 2000++)में तैयार सी.डी के साथ दें। शोधपत्र प्राप्त होने के एक सप्ताह के अन्दर लेखक को स्वीकृति पत्र प्रेषित कर दिया जायेगा। ई-मेल से प्राप्त शोधपत्र हेतु ई-मेल से स्वीकृति भेजी जायेगी। शोधपत्र प्रेषित करने के पूर्व प्रधान सम्पादिका से दूरभाष पर अवश्य सम्पर्क करें। सम्पादक मण्डल अथवा सलाहकार समिति में सम्मिलित करने का अंतिम निर्णय संस्था का होगा।

सदस्यों से निवेदन है कि वर्ष में 20 सदस्य पत्रिका से जोड़कर संस्था का सहयोग करें।

Other MPASVO Journals

Saarc: International Journal of Research
(Six Monthly Journal)
www.anvikshikijournal.com

Asian Journal of Modern & Ayurvedic Medical Science
(Six Monthly Journal)
www.ajmams.com

www.onlineijra.com

ISSN 0973-9777
09739777

₹ 1200/-